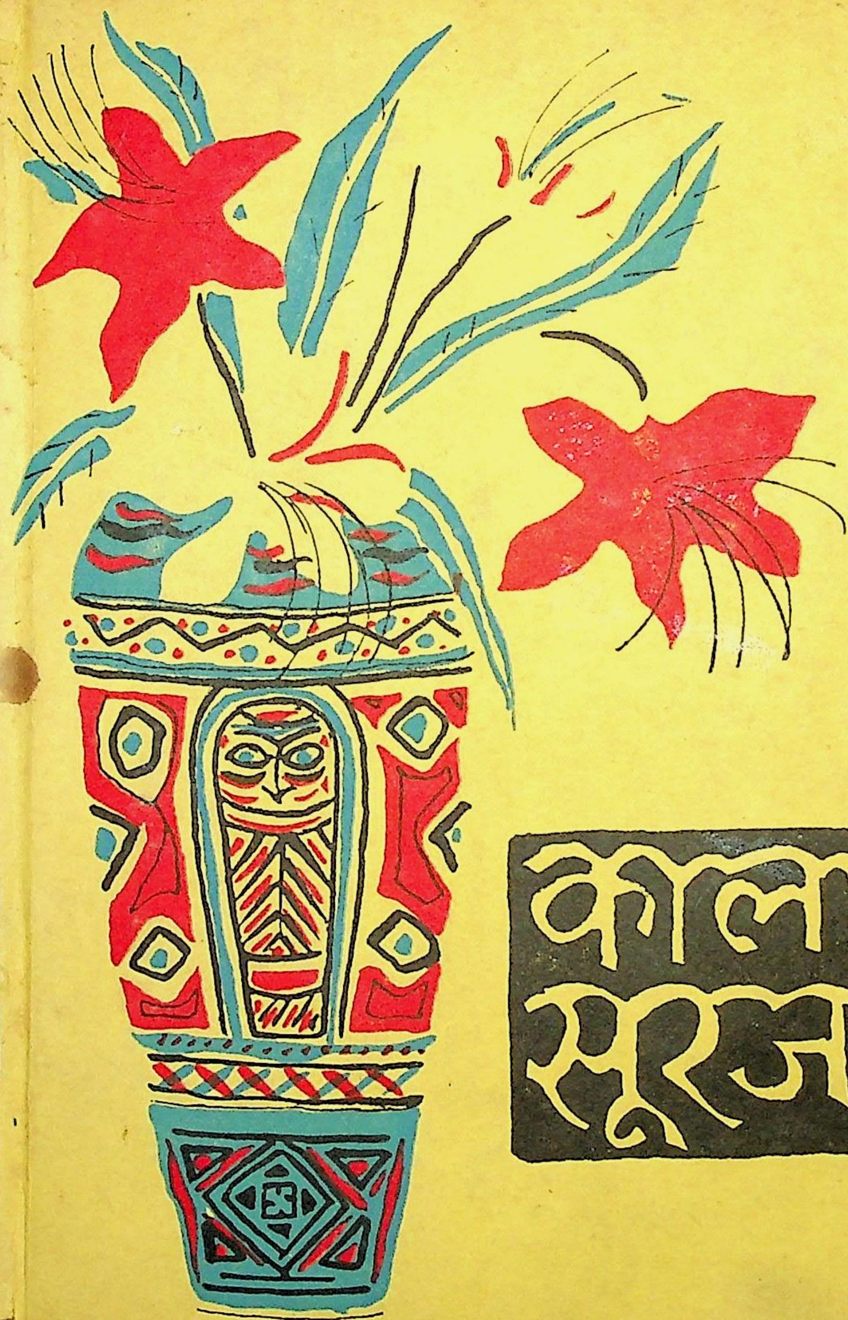
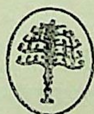


काला सूरज

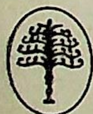
दल्ली

काला सूरज

कृश्न चन्दर



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली



मूल्य : साढ़े तीन रुपये (3.50)
चौथा संस्करण 1970; © राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली
रूपाभ प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित
KALA SURAJ (Short Stories) by Krishan Chandar

251

क्रम

छः कहानियां

एक

काला सूरज

मैदानों से बहुत दूर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों से घिरी हुई एक घाटी थी। घाटी के बीच में एक छोटी-सी, परन्तु अत्यन्त सुन्दर झील थी। एक पतली-सी, मन्दगति नदी पूर्वी पहाड़ों से निकलकर इस झील में आ मिलती थी, और झील के दूसरे किनारे से फूटकर पश्चिमी पर्वत-श्रेणी की ओर चली जाती थी।

इस घाटी के अन्दर पहुंचने का मार्ग बड़ा कठिन एवं दुर्गम था। चारों ओर इतने ऊंचे पहाड़ थे कि ग्रीष्म-ऋतु में भी इनकी चोटियां बर्फ से ढकी रहती थीं। तीन दिशाओं से—अर्थात् उत्तर, पूर्व तथा दक्षिण से—घाटी के अन्दर पहुंचने का कोई मार्ग न था। केवल पश्चिमी पर्वत-माला में, जिधर को नदी निकलती थी, एक छोटा-सा दर्रा था। उसमें भी वर्ष के आठ महीनों में बर्फ़ पड़ती रहती थी, जिससे इन आठ महीनों में वह दर्रा भी न होने के बराबर था। शेष चार महीनों में भी दर्रे पर इतनी गहरी धुन्ध छाई रहती, इतनी गहरी कीचड़ और फिसलन होती कि उन महीनों में भी उस घाटी में पहुंचना कोई हंसी-खेल नहीं था। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त दर्रे के दोनों ओर इतने गहरे और भयानक खड्ड थे कि कोई विरला ही दर्रे से इधर या उधर आने-जाने का साहस कर सकता था। कभी-कभार कोई व्यापारी काफिला खच्चरों और घोड़ों पर सामान लाद-

कर घाटी में बड़ी कठिनाई से पहुंचता और वह सामान वहां छोड़कर तथा घाटी में पैदा होने वाले पदार्थ लेकर वापस चला जाता। परन्तु यह व्यापार भी गरमी के दो-चार महीनों में ही हो पाता था—अर्थात् उन दिनों में जब कि दर्रे की बर्फ़ पिघल जाती और बर्फीली हवाओं के झक्कड़ थम जाते। साल के शेष आठ-नौ महीनों में घाटी के लोग वाह्य संसार से नितान्त अलग-थलग जीवन व्यतीत करते थे।

इस घाटी के लोगों ने बाहर की दुनिया बहुत कम देखी थी, इसलिए वे अपनी घाटी को ही संसार का सबसे सुन्दर प्रदेश समझते थे। और इसमें कोई सन्देह है भी नहीं कि वह घाटी अत्यन्त मनोरम और आकर्षक थी। चारों ओर पहाड़ों की ऊंची-ऊंची चोटियां बर्फ से ढकी रहती थीं और पहाड़ों की ढलानों, देवदार और चील के सुन्दर पेड़ों के जंगलों से भरी रहती थीं। पेड़ों से अंगूर की बेलें लिपट-लिपट जाती थीं। अगर की झाड़ियों के गोल-गोल, हरे-हरे पत्तों की सुगन्ध से सारा जंगल महका हुआ था। हरे-हरे चंचल तोते खुशी से चिल्लाते-चीखते डाल-डाल उड़ते फिरते थे, और सुन्दर रतगले अपनी सतरंगी कलगियां सिरों पर सजाए बनफशे के नीले-नीले, छोटे-छोटे फूलों में चहकते फिरते थे। बड़ी-बड़ी आंखों वाले हिरन, सफेद समूर वाले विशालकाय रीछ तथा द्रुतगामिनी लोमड़ियां इस जंगल की शोभा थीं। जंगलों से थोड़ा नीचे, घाटियों में, लम्बी-लम्बी दूब होती थी जो गर्मियों के दिनों में बिल्कुल सुनहरी हो जाती थी और ऐसी लगने लगती थी जैसे धरती में से सूरज की किरनें फूट रही हों। इस घास पर वे भेड़-बकरियां पलती थीं जिनकी घनी और रेशम जैसी मुलायम ऊन संसार में शायद ही कहीं होती हो।

घाटी के किसानों ने सैकड़ों—शायद हज़ारों—वरसों के परिश्रम से घाटी को काट-काटकर छोटे-छोटे खेत तैयार किए थे, जहां मुख्य रूप से मकई की फसल उगाई जाती थी। इन खेतों की मींड़ों पर सूरजमुखी के बड़े-बड़े पीले-पीले फूल खिले रहते थे और सारी घाटी को एक अलौकिक सौन्दर्य और शोभा प्रदान करते रहते थे।

घाटी में, कुछ और नीचे की ओर, नदी के किनारे-किनारे फलदार पेड़ों के बगीचे थे। जहां-तहां बेद मजनूं के घने कुंज भी उगे हुए थे। इन झाड़ियों की लम्बी-लम्बी डालियां नदी के पानी में दूर तक झुकी हुई चली गई थीं। ऐसा लगता था मानो अल्हड़ देहाती सुन्दरियां नदी के किनारे खड़ी हुई, सर झुकाए, केश-राशियां बिखराए, अपनी-अपनी अंगुलियों की सुन्दर पोरों से पानी के साथ खेल रही हैं।

झील के चारों ओर रंग-बिरंगे फूलों के तख्ते थे। इन तख्तों के बीच में से ठंडे पानी की कूकें चलती थीं। ये कूकें फूलों के तख्तों में से निकलकर धान के खेतों की ओर चली जाती थीं। जब चांदनी छिटक रही होती, गड़रिये की बंसी बजती, और धान की बालें सरसरातीं तो ऐसा लगता जैसे धरती के रोम-रोम में प्यार की अज्ञात-सी, बेनाम-सी सुगन्ध रची जा रही है, धरती अंगड़ाई लेकर जागने लगी है और प्यार के धीमे-धीमे, ठंडी-ठंडी सांस लेने लगी है।

झील के बीच में एक छोटा-सा मनोरम द्वीप था। इस द्वीप पर गांव के सरदार का दोमंज़िला भव्य भवन बना हुआ था। द्वीप के चारों ओर छोटी-छोटी नावें बंधी रहती थीं। इन नावों पर सवार होकर गांव के मछुए मछलियां पकड़ा करते थे—याकूत जैसी आंखों वाली मछलियां, रंगदार दुमों वाली मछलियां, वे मछलियां जिनकी रुपहली गरदनों से चांदी की सी किरनें फूटती हैं।

घाटी के रहने वाले लोग मकई और चावलों की खेती करते थे। वे जंगलों से शहद, बनफशा और कस्तूरी इकट्ठी करते, भेड़ों की ऊन और लोमड़ियों की समूर बेचते, गाना गाते, नाचते, शादी-ब्याह करते और बच्चों से खेलते थे तथा सरदियों में चीड़ की आग जलाकर और गरमियों में पेड़ों की ठंडी-ठंडी छांव में बैठकर जीवन व्यतीत करते थे। उन लोगों का जीवन आनन्द से परिपूर्ण था। घाटी के सब लोग काम करते थे और बहुत खुश थे। गांव के सरदार के पास सब कुछ था, परन्तु वह खुश नहीं था, क्योंकि उसके पास कोई काम नहीं था। वह दिन-भर शिकार खेला

करता और रात को राग-रंग के ठाठ सजाता, परन्तु फिर भी वह खुश नहीं था। उसके पास घाटी में सबसे अधिक भूमि थी, उसका भवन सबसे अधिक सुन्दर, भव्य और सुखद था, उसकी पत्नी सबसे अधिक सुन्दर थी, उसके बच्चों के पास अत्यन्त सुन्दर फरगल थे, और उसके पास सबसे अधिक धन-वैभव था, परन्तु फिर भी वह प्रसन्न नहीं था। काम न कभी उसने किया था, न उसके बाप ने। फिर भी वह खुश नहीं था। और सब तरह की मौज होते भी उसे पता नहीं लगता कि वह क्यों खुश नहीं है।

सरदार को अपनी घाटी से बड़ा प्यार था। वह घाटी को अधिक से अधिक सुन्दर बनाने के नये-नये उपाय सोचता रहता था। एक दिन उसने सोचा कि यह घाटी दिन को तो इतनी मनोहर, इतनी सुन्दर दिखाई देती है, परन्तु रात के समय जब अंधकार छा जाता है तो ये खेत, यह नदी, ये फलदार पेड़ों के उद्यान, ये फूलों के तख्ते सहसा अंधकार में इस तरह खो जाते हैं जैसे इस घाटी में अंधकार के सिवाय और कुछ था ही नहीं। रात को यह घाटी कितनी सुनसान, कितनी भयानक और कितनी काली दिखाई देने लगती है। केवल जंगलों से जंगली पशुओं की भयानक आवाज़ें आती हैं, और बर्फीली हवाओं के तीखे, तीव्र झक्कड़ देवों की भांति गरजते हुए घाटी में इस तरह चक्कर लगाते फिरते हैं मानो घाटी में सरदार का राज नहीं है वरन् इनका राज है।

सरदार पढ़ा-लिखा और समझदार आदमी था। उसने बहुत सोच-विचार के बाद बाहर से बिजली पैदा करने की एक मशीन मंगवाई। बड़ी कठिनाइयों के बाद वह मशीन उसके द्वीप के एक कोने में स्थापित की गई। कुछ ही दिनों में घाटी के हर घर में बिजली लग गई। छोटी-छोटी पगडंडियों पर भी बिजली की रोशनी लग गई। नदी के किनारे-किनारे एक पक्की सड़क बनाई गई और उसे भी बिजली की रोशनी से सजा दिया गया। सरदार के घर का तो कोना-कोना बिजली की रोशनी से जगमगा उठा। घर के अन्दर-बाहर बिजली के रंग-बिरंगे लट्टू दूर से फूलों की तरह दिखाई देते। घाटी के लोग आनन्द-विभोर होकर उधर संकेत कर-

करके कहते, "आहा ! वह देखो, उस द्वीप के ऊपर वह हमारे सरदार का भवन है ।"

घाटी के लोग सरदार के इस महान् और योग्यतापूर्ण कार्य से बहुत प्रसन्न हुए । और जब सरदार ने यह निश्चय किया कि घाटी का प्रत्येक निवासी अपने घर में बिजली लगवाने तथा सड़कों और पगडंडियों पर बिजली की रोशनी से लाभ उठाने के बदले में कुछ रुपया कर के रूप में सरदार को अदा किया करे, तो प्रत्येक व्यक्ति ने कर देना सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

इस कर से सरदार को हर महीने काफी आमदनी होने लगी । बिजली का सारा खर्च निकालकर भी उसे हर महीने काफी रुपया बच जाता । जितनी आमदनी उसे बिजली के कर से हर महीने होने लगी, उतनी आमदनी उसे पिछले दस बरसों में भी नहीं हुई थी । सरदार ने कर कुछ अधिक ही लगाया था । किन्तु घाटी के लोगों ने इस बात की परवाह नहीं की । आखिर उनके घरों में बिजली लगाई गई थी—और बिजली की तेज़ रोशनी पहले के दीपकों की मद्धम रोशनी से सैकड़ों गुना अधिक अच्छी थी । इस कारण उन्होंने थोड़ा अधिक कर देने में कोई आपत्ति नहीं की ।

कुछ दिनों के बाद सरदार को एक और बात सूझी । उसने सोचा कि इस घाटी के भोले-भाले देहाती किसान तथा अन्य लोग बड़ी कठिनाइयों से इस घाटी के पश्चिमी दर्रे को पार करते हैं । कभी यहां धुन्ध होती है और कभी फिसलन । कई बार लोग खड्डों में गिरकर अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं । इसके अतिरिक्त जब नदी में बाढ़ आती है तो वह भी कई लोगों के प्राण ले लेती है । इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिए क्यों न नदी पर एक पक्का पुल बनवा दिया जाए जो साल के बारहों महीने काम आ सके और जिसके द्वारा बाहर के जगत् से घाटी का सम्बन्ध बारहों महीने बना रहे । इससे व्यापार में कितनी सुविधा हो सकती थी, इसका सरदार ने पूरी तरह अनुमान लगा लिया ।

घाटी के लोगों को सरदार का यह प्रस्ताव बहुत पसन्द आया । सबने

इस कार्य में अधिक से अधिक सहयोग देने का वचन दिया। कार्य प्रारम्भ कर दिया गया और लोगों की कड़ी एवं निरन्तर मेहनत के फलस्वरूप यह पुल तीन महीनों में बनकर तैयार हो गया। सरदार ने इस पुल की रक्षा और देख-भाल के लिए चौकीदार नियुक्त किए। फिर सरदार ने पुल का खर्च निकालने के लिए तथा चौकीदारों को वेतन देने के लिए एक कर लगाया जो पुल पर से आने-जाने वाले हर व्यक्ति को देना पड़ता था। कर कुछ अधिक था, किसीने भी बुरा नहीं माना, क्योंकि पुल घाटी के रहनेवालों की एक बहुत बड़ी आवश्यकता को पूरा करता था और उनकी कितनी ही कठिनाइयों को दूर करता था। अब वे साल के बारह महीनों में बाह्य जगत् से अपनी घाटी का सम्बन्ध अटूट रख सकते थे और अपनी समूरों, फरगलों, ऊन, शहद तथा कस्तूरी को बाहर की दुनिया में बेच सकते थे। चाहे सस्ते दामों बेचें, चाहे महंगे दामों, किन्तु बेच अवश्य सकते थे। इसलिए किसी ने आनाकानी एवं आपत्ति न की और बिजली के कर के साथ-साथ पुल का कर भी देने लगे।

सरदार को अब बिजली के कर की आमदनी के साथ-साथ पुल के कर से भी अच्छी आमदनी होने लगी। उसने अपने मकान के ऊपर एक और मंजिल बनाई और अपने तहखाने में सोने के सिक्कों के ढेर लगाने शुरू कर दिए। पहले उसके पास कोई काम नहीं था, अब उसे एक काम हाथ लग गया—वह प्रतिदिन कई घंटे अपने तहखाने में बिताता, सिक्कों को गिनता और उनकी मधुर झंकार को सुनकर प्रसन्न होता। वह यह देखकर आनन्द-विभोर हो उठता कि सिक्कों का ढेर नित्यप्रति बढ़ता जा रहा है।

फिर योग्य एवं चतुर सरदार को एक और बात सूझी। उसने सोचा कि ये बेचारे अनपढ़ उजड्ड किसान घाटी की मूल्यवान् पैदावार को अकेले-अकेले अलग-अलग ले जाकर घाटी से बाहर बेचते हैं और बहुधा धोखा खा जाते हैं। कभी एक मूल्यवान् समूर वे बीस रुपये में बेचते हैं तो कभी वैसा ही समूर दस रुपये में दे आते हैं। इस तरह घाटी का धन दूसरे लोग लूट लेते हैं। सरदार ने सोचा कि क्यों न इस सारे कार्य को एक केन्द्र पर इकट्ठा कर

दिया जाए, क्यों न वह स्वयं ही इस सारे कार्य को अपने हाथ में ले ले। ऐसा होने पर किसानों को एक निश्चित रकम मिल जाया करेगी, और वे मूल्य की घटा-बढ़ी के झंझट से भी छूट जाएंगे। और साथ ही उसे भी इस सारी दौड़-धूप के बदले में थोड़ा-सा लाभ हो जाया करेगा—बस थोड़ा-सा लाभ।

परन्तु जब उसने अपना वह प्रस्ताव घाटी के रहने वालों के सामने रखा, तो बहुत-से लोगों ने इसे स्वीकार नहीं किया। यह ठीक है कि सरदार हर वस्तु के जो दाम लगा रहा था, उन दामों की अपेक्षा लोगों को बहुधा घाटी के बाहर कम दाम मिलते थे, परन्तु यह भी सच है कि कितनी ही बार उन्हें दाम अधिक भी मिल जाते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें यह आशा भी होती थी कि शायद अगली बार उन्हें अच्छे दाम मिल जाएं। इन बातों को दृष्टि में रखते हुए कुछ लोगों ने सरदार के प्रस्ताव का विरोध किया। कुछ लोग सहमत भी हो गए। परन्तु सरदार के समझाने-बुझाने पर भी कुछ लोग इस प्रस्ताव के विरोधी ही रहे। सरदार के सामने अब इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं रह गया कि वह पुल के ऊपर तोपें खड़ी करवा दे तथा लोगों का घाटी से बाहर जाना एवं अन्दर आना बन्द कर दे।

लोगों ने सरदार के प्रस्ताव को इसलिए स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि इससे घाटी का सारा व्यापार केवल एक आदमी के हाथ में चला जाता था। परन्तु जब पुल पर तोपें चढ़ गईं और पुल के चौकीदारों की संख्या चौगुनी हो गई, और लोगों ने देखा कि अब वे किसी भी तरह बाहर की दुनिया को अपना माल न बेच सकेंगे, तो विवश होकर सब लोगों ने अपना सारा माल—समूर, फरगलें, ऊन, शहद, फल, कस्तूरी, अनाज आदि सरदार के हाथ, उसके नियत किए हुए दामों पर, बेच दिया। अब जब सरदार ने घाटी की सारी पैदावार को कुछ ऊंचे दामों पर घाटी से बाहर जाकर बेचा तो उसके पास धन का इतना बड़ा ढेर हो गया कि उसके रखने के लिए तहखाने की जगह छोटी पड़ गई।

सरदार को अब एक और तहखाना बनवाना पड़ा। उसने अपने द्वीप के चारों ओर कड़ा पहरा लगवा दिया। लोगों से मिलना-जुलना भी अब उसने बहुत कम कर दिया। कर अब वह स्वयं वसूल न करता था, वरन् इस काम के लिए उसने बहुत-से कर्मचारी नियुक्त कर दिए थे। अपना अधिकांश समय वह तहखाने में बैठकर सोने के सिक्कों के साथ खेलने में व्यतीत करता था।

ज्यों-ज्यों तहखाने में सोने का ढेर बढ़ता गया, सरदार के मन में लोभ भी बढ़ता चला गया। उसके मन में अभिलाषा हुई कि वह इस घाटी का ही नहीं वरन् सारे संसार का सबसे अधिक धनवान् व्यक्ति कहलाए। इसी सोच-विचार में वह दिन-रात घुलने लगा कि किस उपाय से उसकी आमदनी दुगुनी हो जाए। उसने हिसाब लगा लिया था कि यदि उसकी आमदनी अब से दुगुनी हो जाए तो वह संसार का सबसे धनाढ्य व्यक्ति बन जाएगा।

"वह उपाय क्या हो सकता है ?"

घाटी का सारा धन उसके पास था, घाटी का सारा व्यापार उसके हाथ में था, घाटी की सारी भूमि उसके पास गिरवी पड़ी थी। वह एक के बाद दूसरा कर लोगों पर लगाता चला गया—यहां तक कि लोगों के पास अब इतने साधन भी शेष न रहे कि वे नया कर दे सकें।

"तो फिर क्या किया जाए ?"

सात दिन और सात रात वह निरंतर अपने तहखाने में सोने के सिक्कों की झंकार सुनता रहा और अपने धन को दुगुना करने के उपाय सोचता रहा। जब सातवीं रात समाप्त हुई और आठवें दिन का प्रभात हुआ तो वह अपने तहखाने में से निकला। सूरज के प्रकाश ने उसकी आंखों को चुंधिया दिया, उसकी आंखें स्वतः बन्द हो गईं। और उसे एकदम खयाल आया कि यदि किसी तरह दिन के समय में भी अंधेरा हो जाए तो फिर···फिर तो घाटी के लोग दिन में भी बिजली लेने के लिए विवश हो जाएंगे। इस खयाल के आते ही उसने अपनी जांघ पर ज़ोर से हाथ मारकर

'वाह-वाह' कहा और उसी समय अपने विश्वस्त सिपाहियों को बुलाकर अपना सुझाव उनके सामने रखा।

इस उपाय को सुनकर उसके विश्वस्त सिपाहियों ने भी अपने कानों पर हाथ रखे और त्राहि-त्राहि करते हुए इसको कार्यान्वित करने से इन्कार कर दिया। परन्तु सरदार अपनी दौलत को दुगुनी करने का दृढ़ निश्चय कर चुका था, इसलिए उसने किसी की एक न सुनी। जिन सिपाहियों ने उसकी आज्ञा का पालन करने से इन्कार किया, उन्हें तत्क्षण गोली से उड़ा दिया गया। अन्त में हीरा नामक एक सिपाही बड़ी कठिनाई से सरदार के सुझाव को कार्यान्वित करने के लिए उद्यत हो गया। सरदार ने उसे बहुत-सी अशर्फियां पारितोषिक के रूप में प्रदान कीं, उसका ऋण क्षमा कर दिया, उसकी धरती जो गिरवी पड़ी थी, उसे वापस दे दी। फिर उससे प्रतिज्ञा कराई गई कि वह सरदार के बताए गए उपाय को अवश्यमेव अगले दिन सवेरे कार्यान्वित कर डालेगा।

अगले दिन सवेरे सूरज नहीं उगा। लोग बहुत देर तक सोते रहे परन्तु सूरज नहीं निकला। अन्त में लोग उठे और आंखें मलकर प्रातःकाल की प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु ऐसा लगता था मानो यह रात कभी समाप्त नहीं होगी और सूरज कभी नहीं निकलेगा। लोगों ने अपने बन्द घरों की खिड़कियां और द्वार खोले और आकाश की ओर देखा और पूर्वी पहाड़ों की उन चोटियों की ओर देखा जिनके पीछे से प्रभात का प्रकाश फैला करता था और सूरज उगा करता था।

परन्तु आज न तो प्रभात आया था और न ही सूरज निकला था। बहुत देर तक लोग बड़ी बेचैनी से प्रातःकाल की प्रतीक्षा करते रहे। आकाश और पृथ्वी पर घोर अंधकार छाया हुआ था।

कुछ देर के बाद घाटी के लोगों ने पूर्वी पहाड़ों के पीछे एक हल्की-सी, मद्धम-सी, मैली-सी रोशनी की लौ देखी जो रात के समय में जुगनू की चमक से अधिक प्रकाशमान नहीं थी। उसके बाद जो दृश्य लोगों ने देखा, उससे कितने ही लोग तो मूर्छित होकर गिर पड़े। बच्चे डर के मारे अपनी

माताओं की गोद में छिप गए। स्त्रियां छाती पीटकर बैन करने लगीं।

घाटी के रहने वालों ने देखा कि पूर्वी पहाड़ों से आज जो सूरज निकला है उसका मुंह काला है—मानो उसके मुंह पर किसी ने कालिख पोत दी हो। आज सूरज में से रोशनी नहीं आ रही थी। और चूंकि रोशनी नहीं आ रही थी इसलिए गरमी भी नहीं आ रही थी। एक मैली-सी हल्की-सी रोशनी काले सूरज के चारों ओर लिपटी हुई थी। लोगों को दिन में भी ऐसा लग रहा था जैसे अभी रात का समय है। तो क्या कभी भी प्रभात नहीं होगा? कभी भी सूरज की जीवनदायिनी रोशनी घाटी में नहीं फैलेगी? बहुत-से लोग पागल होकर घाटी में घूमने लगे। लोग चिल्लाने लगे—प्रलय आ गई, सृष्टि का अन्त निकट आ गया, उठो, दौड़ो, भागो, अपने पापों का प्रायश्चित्त कर लो, महाप्रलय आ पहुंचा है!!

इसी तुमुल चीत्कार और रोने-पीटने में दो दिन और दो रातें बीत गईं। दूसरे दिन फिर सूरज निकला, परन्तु काला। लोगों ने दूसरे दिन प्रभात की प्रतीक्षा की, परन्तु प्रभात न हुआ। तीसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। चौथे दिन लोग सरदार के पास पहुंचे और उससे सहायता मांगी। सरदार ने कहा, "तुम लोगों ने कई बार मुझसे विमुख होने का प्रयत्न किया है, इसलिए इस दैवी आपत्ति ने तुम लोगों को आ घेरा है। अब तुम लोग इस आपत्ति को भुगतो।" लोग गिड़गिड़ाए, "नहीं सरदार! हमपर दया करो, हम गरीब आदमी हैं, कोई उपाय सोचो।"

सरदार ने मुस्कराकर कहा, "एक ही मार्ग है, एक ही उपाय। पहले केवल रात को बिजली जलती थी, अब तुम लोगों को दिन में भी बिजली से काम लेना पड़ेगा। पहले तुम लोग केवल घरों में ही बिजली जलाते थे, परन्तु अब खेतों में, घाटियों में, जहां तुम भेड़ें चराते हो उन चरागाहों में, तथा जहां से तुम लोग कस्तूरी और शहद लाते हो उन जंगलों में भी तुम्हें दिन-रात बिजली जलानी पड़ेगी। इसलिए मुझे एक और बिजली-घर बनाना पड़ेगा। परन्तु मेरा खर्च चौगुना हो जाएगा, इसलिए अब तुम्हें कर भी चौगुना देना पड़ेगा…।"

लोग मरते क्या न करते। उन्होंने चौगुना कर देना स्वीकार कर लिया। कुछ दिन तो उनके मन में आशा रही कि सम्भव है इस काले सूरज की जगह कभी वही पुराना चमकीला सूरज निकल आए। उन्होंने सोचा कि यदि वही पुराना सूरज निकल आया तो वे कर देना बन्द कर देंगे। परन्तु लोग नित्यप्रति सवेरे उठकर उस सुन्दर, चमकदार सूरज की तलाश में आकाश की ओर देखते और हर रोज़ उन्हें निराशा का मुंह देखना पड़ता। प्रतिदिन वही काला सूरज निकलता—पूर्वी पहाड़ों के पीछे से निकलकर पश्चिमी पहाड़ों के पीछे छिप जाता। जैसा दिन वैसी रात। लोगों का जीवन अब उसी ढंग का हो गया। एक निरन्तर काली रात ने उनके जीवन को घेर लिया। दिन किसे कहते हैं, धूप, रोशनी क्या होती है, धूप किस तरह चमकती है, फूल किस तरह मुस्कराते हैं, नदी की लहरें किस तरह प्रकाश और छाया का ताना-बाना बुनती हैं और आंखों से प्यार किस तरह झांकता है—लोग इन सब बातों को धीरे-धीरे भूल गए।

इसी तरह बहुत-से दिन बीत गए, महीनों और वर्षों का समय व्यतीत हो गया।

घाटी पर एक भयंकर उदासी छा गई। अब कोई मनुष्य हंसता नहीं था, स्त्रियां गीत नहीं गाती थीं, बच्चे खेलते नहीं थे। मर्द सिर झुकाए हुए खेतों में काम करते थे, परन्तु पैदावार दिन पर दिन कम होती चली जा रही थी। फिर फूलों का रंग उड़ गया, फलों में मिठास नहीं रही, फिर पत्तों का रंग काला हो गया, और चावलों का स्वाद मिट्टी जैसा होने लगा। कुछ दिनों के बाद बच्चे अन्धे पैदा होने लगे, क्योंकि जब आंखों को रोशनी न मिले तो पुतलियों की क्या आवश्यकता है? फिर लोगों ने प्रेम करना छोड़ दिया, क्योंकि जब पुतलियां देख न सकें तो प्रेम करने का मज़ा ही क्या है, और जब आदमी प्रेम न कर सके तो किसी का हाथ पकड़कर मुस्कराने की क्या आवश्यकता है? और जब आदमी किसीका हाथ पकड़-कर मुस्करा न सके तो उसे आदमी कहलाने और बनने की क्या आव-

श्यकता है ? थोड़े ही दिनों में घाटी के लोग मानवता के महान् गुणों को त्यागकर पशुता की ओर बढ़ने लगे। चोरी, डकैती, हत्या, अपहरण आदि के अपराध दिन-प्रतिदिन बढ़ते चले गए।

इधर अपराध बढ़ रहे थे, उधर तहखाने में सोने का ढेर बढ़ रहा था। धन-दौलत चारों ओर से सिमटकर एक तहखाने में एकत्र हो रही थी। लोभरूपी दानव के पंजे में फंसा हुआ सरदार प्रतिदिन तहखाने में जाता, अशर्फियों को गेहूं के ढेर की तरह उठा-उठाकर वहीं डालता और उनकी झंकार सुनकर उसका रोम-रोम हर्ष-विभोर हो उठता। खुशी के मारे वह पागलों की भांति चिल्लाने लगता और अट्टहास करने लगता। इसी तरह दिन बीतते गए, महीने बीतते गए और साल बीतते चले गए।

बूढ़ा सिपाही हीरा, अपने घर में पड़ा हुआ मर रहा था। वह सफेद कोढ़ से पीड़ित था। मरते समय उसने अपने सात वर्षीय बेटे को बुलाया और उससे कहा, "इधर-उधर अच्छी तरह देखकर बता कि मेरे घर के आसपास कोई आदमी तो छिपा हुआ नहीं बैठा है।"

सात वर्ष के बच्चे ने घर के चारों ओर चक्कर लगाया और आकर कहा, "नहीं, कोई नहीं है।"

तब बूढ़ा हीरा बोला, "मैं मर रहा हूं। मैंने एक बहुत बड़ा पाप किया है।"

उसका बेटा चुपचाप सुनता रहा।

"इस घाटी पर यह जो भयानक आपत्ति आई हुई है, यह मेरी ही लाई हुई है। मैं मर रहा हूं। इस आपत्ति को अब तू ही दूर कर सकता है।"

बेटा चुपचाप सुनता रहा।

बूढ़ा हीरा खांसकर फिर बोला, "सुन, कान लगाकर सुन ! इस घाटी में जो काला सूरज निकलता है पहले उसका रंग काला नहीं था।"

बच्चे ने कहा, "मैंने सूरज सदा काला ही देखा है। क्या सूरज किसी दूसरे रंग का भी होता है ?"

बूढ़े ने कहा, "पहले इसका रंग काला नहीं था। मैंने एक दिन प्रातः काल···"

"प्रातःकाल क्या होता है ?" बच्चे ने एकदम आश्चर्यचकित होकर पूछा।

बूढ़ा खांसते-खांसते रुक गया। उसकी आंखों में आंसू भर आए। उसने सोचा, मैं कैसा दुष्ट, कैसा निर्दय हूं ! मेरे बच्चे ने प्रातःकाल का समय ही नहीं देखा है, इसने रंगदार परों वाली तितलियां कभी नहीं देखीं, सूरज-मुखी का फूल नहीं देखा। हाय ! मैं कितना क्रूर हूं ! वह कहने लगा, "यह काला सूरज जो तू रोज़ देखता है, इसके चेहरे पर मैंने एक दिन कालिख पोत दी थी। मैंने सरदार के कहने में आकर एक दिन सवेरे के समय पूर्वी पहाड़ों के पीछे इस सूरज को दोनों हाथों से पकड़ लिया और उसके मुख पर कालिख पोत दी। यह जो तू मेरे हाथों पर कोढ़ देख रहा है, यह उसी पाप का परिणाम है। मैंने सोने के कुछ टुकड़ों के लिए घाटी की सारी खुशी को इसके सौन्दर्य को, इसके आनन्द, इसके सुख और इसकी शांति को मिट्टी में मिला दिया है। सूरज के मुंह पर कालिख लगाते-लगाते मेरे दोनों हाथ जल गए थे और मेरी दोनों आंखें अंधी हो गई थीं। मैंने घाटी में अपनी आंखों से जो महानाश और विपत्ति के दृश्य देखे हैं, उन्हें देख-देखकर कितनी ही बार मेरा जी चाहा कि फिर से सूरज को साफ-सुथरा कर दूं, इसके मुंह पर से कालिख उतारकर फिर से इसे चमकदार, प्रकाशमान कर दूं। परन्तु अब मैं अन्धा हूं और मर रहा हूं, इसलिए यह काम अब तुझे करना पड़ेगा।"

बच्चे ने कहा, "मुझे ? अकेले को ?"

"हां, अकेले को ही। देख, मेरे बिस्तर के नीचे तारपीन के तेल का डब्बा रखा है। इसे मैंने बहुत दिनों से संभालकर रखा हुआ है। सूरज के चेहरे पर जो कालिख लगी हुई है, यह वास्तव में तारकोल है। यह तार-कोल इस तेल से छूट जाएगा। तू कल सवेरे ही पूर्वी पहाड़ की चोटी पर चला जाइयो।"

"सवेरे कौन-सा समय होता है ?" बच्चे ने कुछ विचलित-सा होकर पूछा।

"अब तो मुझे भी पता नहीं," हीरा ने उदासी से कहा। थोड़ा रुककर वह फिर कहने लगा, "अच्छा तो यह रहेगा कि यह तेल का डब्बा उठाकर तू अभी चल दे और रात-भर चलता चला जा। जब तू पूर्वी पहाड़ की चोटी पर पहुंच जाए तो उसके पीछे जाकर एक बड़ी चट्टान पर खड़ा होकर सूरज की प्रतीक्षा करना, और ज्यों ही सूरज निकले उसे दोनों हाथों से पकड़कर तारपीन के तेल से नहला देना। तब उसका चेहरा साफ हो जाएगा, और फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा। देख, एक तौलिया भी साथ ले जा। उसका मुंह अच्छी तरह से पोंछ देना ताकि कहीं धब्बा न रह जाए। समझा ?"

"जी, बहुत अच्छा।"

सात वर्षीय बालक अपने मरते हुए बाप से विदा हुआ। तारपीन का डब्बा उसके हाथ में था। जंगल में एक रीछ ने उससे पूछा, "तू कहा जा रहा है ?" बच्चे ने उत्तर दिया, "मैं सूरज को नहलाने जा रहा हूं।" यह सुनकर रीछ बच्चे के साथ हो लिया। बच्चा आगे बढ़ा तो उसे एक हिरन मिला। उसने पूछा, "बच्चे तू कहां जा रहा है ?" बच्चे ने कहा, "मैं सूरज को नहलाने जा रहा हूं।" यह सुनकर हिरन भी उसके साथ चल पड़ा। यह आगे बढ़ा तो एक तोता उसके कंधे पर बैठकर टीं-टीं करके पूछने लगा, "बच्चे, बच्चे ! क्या इस डब्बे में मिठाई है ?" बच्चे ने कहा, "नहीं, इसमें तो तारपीन का तेल है। मैं इससे सूरज को नहलाऊंगा।" यह सुन तोता भी उसके साथ हो लिया। बच्चा आगे बढ़ा तो बन्दर ने पूछा, "बच्चे, बच्चे ! यह कन्धे पर कपड़ा क्यों डाल रखा है ? इसे मुझे दे-दो।" बच्चे ने कहा, "नहीं बन्दर, मैं इस तौलिये से सूरज का मुंह पोंछूंगा, उसके चेहरे की कालिख दूर करूंगा।" यह सुनकर बन्दर भी उसके साथ चल पड़ा।

बन्दर ने तौलिया अपने हाथ में ले लिया, तोते ने अपनी चोंच में तारपीन के तेल का डब्बा थाम लिया, और रीछ ने बच्चे को पीठ पर सवार

कर लिया। रीछ तीव्रगामी था, बन्दर और हिरन लम्बी-लम्बी छलांगें लगाते हुए जा रहे थे, और तोता भी हवा में बड़ी तेज़ी से उड़ा जा रहा था। ये चारों मित्र शीघ्र ही पूर्वी पहाड़ों की चोटी पर पहुंच गए और सूरज की निकलने की प्रतीक्षा करने लगे।

बच्चा अपने बाप की आज्ञा के अनुसार पूर्वी पहाड़ के पीछे वाली चट्टान पर खड़ा होकर सूरज की प्रतीक्षा करने लगा। उसके चारों ओर रीछ, हिरन, बन्दर और तोता खड़े हो गए।

बच्चे ने तोते से कहा कि तुम तनिक आगे उड़कर देख आओ कि सूरज आ रहा है या नहीं। तोता उड़ गया और थोड़ी देर बाद आकर बोला, "होशियार ! काला सूरज आ रहा है !"

ज्यों ही सूरज चट्टान के पीछे से निकला, बच्चे ने उसे दोनों हाथों से पकड़ना चाहा, परन्तु सूरज उसकी पकड़ से फिसलकर ऊपर चढ़ गया। बच्चे के हाथ उस तक नहीं पहुंच सके। परन्तु बच्चे के नाख़ूनों की खरौंच सूरज के चेहरे पर पड़ गई थी, और जहां-जहां खरौंच पड़ी थी वहां-वहां से कालिख खुरची गई थी, और वहां-वहां से सहसा प्रकाश की धारा धरती की ओर बहने लगी थी।

"सूरज अन्दर से काला नहीं है," बच्चा प्रसन्नता से चिल्लाया। उसने अपने दोनों हाथ सूरज की ओर बढ़ाए, परन्तु सूरज उसके हाथों की पहुंच से परे हो चुका था और ऊंचा ही ऊंचा चढ़ता जा रहा था। परन्तु बच्चे और उसके मित्रों ने बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया।

चट्टान पर पहले रीछ खड़ा हुआ, उसके ऊपर हिरन, हिरन के ऊपर बन्दर और बन्दर के ऊपर बच्चा। बन्दर ने अपनी पूंछ में सूरज के गोले को बांध लिया। फिर तोते ने अपनी चोंच से तारपीन के तेल का डब्बा खोला और बच्चे ने तौलिया उठाकर तेल से सूरज का मुंह रगड़ना शुरू किया। ज्यों-ज्यों वह सूरज के चेहरे को रगड़ता गया, कालिख दूर होती गई, और सूरज के चेहरे पर मुस्कान फैलती गई।

परन्तु कालिख बरसों पुरानी थी, इसलिए बड़ी कठिनाई से छूट रही

थी। और फिर बच्चे के हाथ भी बहुत छोटे थे। इसलिए बच्चे ने तोते से कहा कि तू नीचे घाटी में जा और मेरे साथियों को सूचित कर दे ताकि वे तुरन्त मेरी सहायता के लिए आ जाएं।

तोता उड़ता हुआ नीचे घाटी में पहुंचा और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा, "वह देखो, घाटी के रहने वालो! पूर्वी पहाड़ के पीछे एक बच्चा सूरज को साफ कर रहा है। जिसको आना हो, उसकी सहायता के लिए तुरन्त आ जाए। जिसको प्रकाश चाहिए वह दौड़कर आ जाए और बच्चे की सहायता करे। डम—डम—डम!"

तोते ने एक ढोल अपने गले में लटका लिया था और वह ढोल बजाता हुआ खुशी से चीख रहा था।

और सचमुच लोगों ने देखा कि पूर्वी पहाड़ों से प्रकाश की धारा फूट रही है। सूरज अभी निकला नहीं था, किन्तु प्रभात हो गया था, और ऐसा लगता था कि अब सवेरा होने ही वाला है।

घाटी के लोग खुशी से चिल्लाने लगे। बच्चे आगे-आगे पूर्वी पहाड़ों की ओर भागने लगे। उनके पीछे युवक, युवकों के पीछे बूढ़े, उनके पीछे स्त्रियां। सब लोग हाथों में तौलिया, बाल्टियां, साबुन उठाए दौड़ पड़े।

सबसे पीछे सरदार था—असहाय, विवश और पराभूत! वह पागलों की तरह चिल्ला रहा था, "मत जाओ, उधर मत जाओ! मैं कहता हूं वापस आ जाओ!!" परन्तु आज उसकी बात को कोई नहीं सुन रहा था और न ही उसकी धमकियों की कोई लेशमात्र भी परवाह कर रहा था।

मानो लोगों के पर लग गए थे। वे देखते ही देखते जंगल को पार करके पूर्वी पहाड़ के पीछे वाली ऊंची चट्टान पर जा पहुंचे, और सब मिलकर सूरज को नहलाने लगे। उन्होंने उसके मुंह को अच्छी तरह रगड़ रगड़कर साफ किया, और कालिख को पूरी तरह दूर कर दिया। बच्चे खुशी के मारे नाचने लगे। स्त्रियां गीत गाने लगीं। जब सूरज का मुंह शीशे की भांति चमकने लगा तो बन्दर ने अपनी पूंछ की जकड़ ढीली कर

दी और बच्चे ने सूरज को ऊपर की ओर आकाश में इस तरह उछाल दिया जिस तरह एक गुब्बारे को उछाल देते हैं। अब जो सूरज पूर्वी पहाड़ से निकला तो वह काला न था बल्कि पहले से भी अधिक चमकीला और सुन्दर था।

नीचे घाटी में प्रकाश फैल गया।

दो

चावल-चोर

राशन की दुकान पर दो तरह के चावल थे—चावल नं० १ और चावल नं० २। चावल नं० १ देखने में उजले थे, और चावल नं० २ मोटे, भद्दे और भूरे थे और उनमें चमड़े की सी दुर्गन्ध आती थी।

त्रिलोचन की मां को अच्छे चावल पसन्द थे। इसलिए वह अपनी थाली में भूरे चावल देखकर बहुत बिगड़ी। बहू से बोली, "यह तुमने चावल पकाए हैं या चप्पल का तला काटकर खिला रही हो ? ले जाओ इन चावलों को मेरे सामने से···।"

इसपर बहू ने कुछ खिसियाकर, कुछ घबराकर, कुछ लजाकर अपने पति की ओर देखा, फिर अपनी सास की ओर देखा, और फिर जल्दी-जल्दी उलझे सांसों में बोली, "तो मांजी ! मैं क्या करूं ? जब राशन की दुकान पर जाती हूं, तब यही नं० २ चावल मिलते हैं। जब चावल नं० १ के लिए पूछो तब यही जवाब मिलता है कि वे समाप्त हो गए, या इस बार वे नहीं आए, या अगली बार आएंगे। पता नहीं इन राशन की दुकान वालों की वह 'अगली बार' कब आएगी ? अब मैं क्या करूं ? आपके लिए वह बस्सी की बासमती कहां से लाऊं ?"

'बस्सी की बासमती' का नाम सुनकर त्रिलोचन की मां चौंक उठी। बहू का लहजा यद्यपि बड़ा नरम था, परन्तु उसके अन्तिम नुकीले और कटु

वाक्य ने मां के हृदय पर बड़ी चोट की। वह कोहमरी के बस्सी गांव की रहने वाली थी, जहां उसके पति जसवन्तसिंह की एक छोटी-सी ज़मींदारी थी। सरदारजी के देहान्त के दो साल बाद तक यह ज़मींदारी त्रिलोचन की मां के प्रवन्ध में रही। फिर देश का विभाजन हो गया और पाकिस्तान बना। दंगों के दिनों में मां को बस्सी छोड़कर बम्बई आना पड़ा पड़ा। उसे अपनी ज़मींदारी और घर-बार छोड़ने का इतना दुःख नहीं था जितना अपने चावल छोड़ने का। उसे अपने खेतों में बढ़िया-बढ़िया चावल बोने का बड़ा चाव था। वह अपने पति से बड़ा अनुरोध करके, बल्कि उसके पीछे पड़कर, दूर-दूर से बढ़िया-बढ़िया चावलों के बीज मंगाया करती थी। पनीरी की हरी-हरी पौध से लेकर उनके पककर धान की सुनहरी बाल बनने तक वह हर रोज़ उनकी निगरानी करती थी—इस तन्मयता, इस सावधानी और इस लगन के साथ कि स्वयं उसका पति बहुधा झल्लाकर उससे कहता, सरदारनी ! चावल खाने के लिए या बाज़ार में बेचने के लिए होते हैं, प्रेम करने के लिए नहीं होते। परन्तु सरदारनी इस विचार से सहमत नहीं थी। उसे सचमुच चावलों से प्रेम था। इसलिए इस अवसर पर वह अपनी बहू का रेशम में लिपटा हुआ व्यंग्य सहन न कर सकी। उसकी बूढ़ी आंखों में आंसू भर आए और वह भर्राए हुए लहजे में अपने बेटे त्रिलोचन को सम्बोधन करके कहने लगी, "बहू बासमती के लिए मुझपर व्यंग्य कस रही है। तू ही बता, तू बम्बई में इतने बरसों से है, तूने यहां हमारी बस्सी की बासमती से अच्छे चावल खाए हैं ?"

"नहीं मां," त्रिलोचन ने धीरे कहा।

"और बेगमां चावल भी तुझे याद होंगे। जब बेगमां धान खेतों में तैयार हो जाता था तो उसकी सुगंध से सारा गांव कसे महक उठता था। उन बेगमां चावलों जैसे चावल तो सपने में भी देखने को नहीं मिल सकते।"

त्रिलोचन ने फिर धीरे से सिर हिलाकर कहा, "हां मां, बेगमां चावल तो अब सचमुच सपना बन गए हैं।"

बेगमां चावलों के साथ स्वयं त्रिलोचन का भी एक मधुर स्वप्न बंधा

हुआ था। त्रिलोचन ने धीरे-धीरे स्मृतियों की पुरानी रस्सी को उतारते हुए उस स्वप्न को खोला तो उसमें से राजकौर निकल आई—लम्बी, बांकी, सौन्दर्य की प्रतिमा, चंचल। त्रिलोचन से मानो वह कह रही थी, 'अरे! मैं तो समझी थी तुमने मुझे भुला दिया है!'

राजकौर एक हाथ में दरांती और दूसरे हाथ में बेगमां चावलों की सुनहरी बालियां लिए खड़ी थी। वह उसके खेतों में बेगमां चावल चुराने आई थी कि त्रिलोचन ने उसे देख लिया।

त्रिलोचन ने पूछा, "यह क्या कर रही हो रात में हमारे खेतों में?"

राजकौर चुप रही।

त्रिलोचन ने कहा, "यह चोरी है।"

राजकौर ने कहा, "चोरी नहीं मजबूरी है।"

त्रिलोचन ने कहा, "क्यों? क्या तुम्हारा बाप लालसिंह फसल में से अपना भाग नहीं बटा ले जाता?"

राजकौर ने क्रोध से कहा, "कितना भाग़ मिलता है, पहले यह बताओ। फिर यह बताओ कि बेगमां चावलों में से हमें भाग क्यों नहीं मिलता। हमें तो वही मोटे, भूरे चावल मिलते हैं। बेगमां चावल तो केवल ज़मींदारों के लिए हैं, मज़ारों के लिए नहीं हैं। क्यों?"

त्रिलोचन चुप हो गया।

तब राजकौर ने सोचा, वह यहां क्यों आई? वह यहां न आती तो अच्छा होता। परन्तु वह करती भी क्या? दिन को तो उसे बुरा नहीं लगता, परन्तु रात के समय में जब हवा खेतों से बेगमां की सुगन्ध उड़ाकर उसके बिस्तर पर लाती थी, तो वह व्याकुल हो उठती थी। उसे ऐसा लगने लगता था जैसे धान की सहस्रों बालियां सरसराती हुई उसके कानों में कुछ कह रही हैं, जैसे धान के लाखों दाने अपनी आंखें खोलकर उसे तक रहे हैं और उसे अपने पास बुला रहे हैं। हर रात बेगमां चावल मानो उसे अपने पास बुलाते थे। वह अब तक अपने को रोकती रही थी, परन्तु आज अपने को न रोक सकी थी और दरांती हाथ में लेकर ज़मींदार के खेतों में चली

आई थी। 'आखिर ये चावल मेरे क्यों नहीं हैं ?' वह वहां खड़ी होकर सोचने लगी, 'मैंने इन्हें बोया है, इन्हें पानी दिया है, महीनों, रात-दिन इनकी सेवा की है। मैं इनके लिए घंटों, पहरों पानी में खड़ी रही हूं, घंटों धूप में खड़ी रहकर शरीर को जलाती रही हूं। मैंने इन्हें बच्चों की तरह पाला है। आखिर ये चावल मेरे क्यों नहीं हैं ?'

राजकौर ने धान की बालियों को अपने गालों से लगा लिया और त्रिलोचन से कहने लगी, "हाय कितने अच्छे चावल हैं ये ! एक-एक दाना इत्र में बसा हुआ है। अब तुम चाहो तो मुझे सरदारजी के पास ले चलो; या पुलिस में दे दो, परन्तु मैं आज यह दृढ़ निश्चय करके आई थी कि तुम्हारे खेतों से बेगमां चावल लेकर ही जाऊंगी।"

त्रिलोचन ने राजकौर के हाथ से दरांती छीन ली और खेत में से बेगमां के इतने पूले काट डाले कि राजकौर की दोनों बांहें भर गईं। राजकौर के गाल आनन्दोल्लास से चमक उठे। उसने धान के पूलों के बीच में से त्रिलोचन को देखा और बोली, "तुम तो कॉलिज में पढ़ते हो, वहां दरांती चलाना भी सिखाते हैं क्या ?"

त्रिलोचन ने गर्वपूर्वक कहा, "क्या मैं किसान का बेटा नहीं हूं ?"

राजकौर ने फिर अपने दोनों हाथों में भरे हुए धान के पूलों को देखा जिन्हें वह अपनी छाती से लगाए हुए थी। फिर उसने विलक्षण, भेद-भरी दृष्टि से त्रिलोचन की ओर देखा और कुछ कहे-सुने बिना वहां से भाग गई।

अपने स्वप्न-जगत् से राजकौर के चले जाने के बाद अब त्रिलोचन को ऐसा लगा मानो इस समय रात है और रात का सन्नाटा छाया हुआ है और चांद के चारों ओर कुंडल है; सामने खूबानी का पेड़ है और खूबानी पर बुलबुल बोल रही है; और चारों ओर सुगन्ध भरे धान के खेत हैं और खेतों के किनारे-किनारे बस्सी नदी धीरे-धीरे बह रही है।

परन्तु यह सब कुछ उसने राजकौर के जाने के बाद अनुभव किया।

इतना कुछ याद करने के बाद त्रिलोचन ने धीरे से, सिर हिलाकर, और रुक-रुककर कहा, "तुम सच कहती हो, बेगमां चावल बहुत मीठे और

स्वादिष्ठ होते हैं।"

मां ने व्याकुल लहजे में कहा, "और तुझे याद है, जब सरदारजी एक बार श्रीनगर से केसरिया चावलों का बीज लेकर आए थे, याद है कितनी मेहनत से हमारे मज़ारों ने वह केसरिया धान हमारे खेतों में पैदा किया था। लोग कहते थे कि केसरिया चावल कोहमरी में पैदा हो ही नहीं सकता, और यदि होगा भी तो उसकी सुगन्ध मर जाएगी। परन्तु जब खेतों में धान लहलहाने लगा तो दूसरे गांव तक केसर की सुगन्ध फैल गई थी। हमारे गांव वाले खुशी से पागल हो गए थे। याद है, जब वह धान पन-चक्की से साफ होकर आया था, तो हाय! कैसे बांके, तीखे, नुकीले, पतले-पतले चावल थे। वे छोटे-छोटे महीन, बारीक चावल! पर जब पतीली में डालो तो फैलकर कितने लम्बे हो जाते थे! डेड़-डेढ़ पोरे जितने लम्बे चावल। याद है!"

त्रिलोचन को अच्छी तरह याद था, क्योंकि जिस दिन केसरिया चावलों की फसल कटी थी उस दिन उसके बाप सरदार जसवन्तसिंह ने उसे घर से बाहर निकाल दिया था, क्योंकि त्रिलोचन ने मज़ारों को केसरिया चावलों में से हिस्सा मांगने पर उकसाया था। बस्सी गांव में केवल दो ज़मींदार थे जिनमें गांव की सारी धरती बंटी हुई थी—सरदार कुलवन्त-सिंह और सरदार जसवन्तसिंह। त्रिलोचन ने यदि केवल सरदार कुलवन्त-सिंह के मज़ारों को हिस्सा मांगने पर उकसाया होता तो खैर कोई बात न थी। जसवन्तसिंह शायद उसे क्षमा कर देता। परन्तु इस लौंडे ने तो स्वयं अपने बाप की ज़मींदारी उलटने की कोशिश की थी। वह तो बेचारे किसानों को ही ज़मींदार के भय के कारण हिम्मत नहीं पड़ी। और जो दो-एक तैयार भी हुए उन्हें ज़मींदार ने झट बेदखल कर दिया। जब इन केसरिया चावलों को काटने का समय आया तो त्रिलोचन ने मलिक पैंदा-खां और मलिक लालखां को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे केसरिया चावलों में से अपना हिस्सा मांगें।

सरदार जसवन्तसिंह ने गरज़कर कहा, "नहीं पैंदे, नहीं लालखां, यह

नहीं हो सकता। तुम लोगों को वही चावल मिलेंगे जो तुम्हें सदा मिलते आए हैं।"

लाल खां बोला, "वही लाल, मोटे, उजड्ड चावल ?"

"हां, हां, वहीं मोटे, उजड्ड चावल जो तुम सदा से खाते आए हो।"

खेतों में जहां यह बात हो रही थी, केसरिया धान की सुनहरी बालियां कटी हुई जगह-जगह पड़ी थीं। पैंदाखां, इनकी ओर अतृप्त अभिलाषा की भावना से देखकर कहने लगा, "सरदारजी ! हमने इनपर बड़ी मेहनत की है। अपने बच्चों से भी अधिक स्नेह से इन्हें पाला है। आखिर इनपर हमारा भी तो कुछ अधिकार है। कुछ तो न्याय करो !"

इसपर त्रिलोचन से न रहा गया। उसने बाप से इजाज़त लिए बिना वहीं, खेत में, केसरिया चावलों के पूले मज़ारों में बांटने शुरू कर दिए। इसपर उसके बाप को बड़ा क्रोध आया और वह घर से बन्दूक उठा लाया और वह अपने बेटे को गोली मारने ही वाला था कि त्रिलोचन की मां दौड़ी-दौड़ी आई और बहुत-से मज़ारे भी इकट्ठे हो गए, तब बड़ी कठिनाई से त्रिलोचन की जान बची। परन्तु उसे घर से निकाल दिया गया और मज़ारों को केसरिया चावल का एक दाना भी न मिला।

त्रिलोचन ने वह रात पैंदाखां के घर में व्यतीत की। सवेरे उठकर वह राजकौर के घर की ओर चला। उसके मन में केवल एक विचार था कि गांव छोड़ने से पहले वह राजकौर को केवल एक बार देख ले। परन्तु राजकौर घर पर नहीं थी। पता चला कि वह गुरुद्वारे गई हुई है। त्रिलोचन गुरुद्वारे पहुंचा, परन्तु दहलीज़ पर रुक गया और दहलीज़ के बाहर पड़े हुए जूतों में राजकौर का जूता ढूंढ़ने लगा।

गुरुद्वारे की दहलीज़ के बाहर बहुत-से जूते पड़े थे—अच्छे जूते, खराब जूते, बड़े जूते, छोटे जूते, नये जूते, पुराने जूते। त्रिलोचन इनमें से बहुत-से जूतों को पहचानता था। जूतों से आदमी किसीके बचपन को मुस्कराता हुआ देख सकता है, किसीकी जवानी का गीत सुन सकता है, तो किसीके बुढ़ापे

की झुर्रियां गिन सकता है। जूते केवल मनुष्य की आयु ही नहीं बताते, वरन् यह भी बताते हैं कि पहनने वाला पुरुष-जाति से सम्बन्ध रखता है या स्त्री-जाति से। यही नहीं, वरन् वे उसकी सामाजिक श्रेणी की ओर भी संकेत करते हैं। ये पम्प-शू सरदार जसवन्तसिंह के हैं, ये क्रेप-शू सरदार कुलवन्तसिंह के हैं, यह काला बूट थानेदार हुकमसिंह का है, यह पिशावरी चप्पल खुशहालचन्द पटवारी की है। ये शेष जूते गरीब किसानों के हैं।

त्रिलोचन की दृष्टि ढूंढ़ते-ढूंढ़ते राजकौर के सलीपर पर पड़ी। उसकी आंखों में चमक दौड़ गई। तो राजकौर भी गुरुद्वारे के अन्दर ही है।

त्रिलोचन गुरुद्वारे के बाहर खड़ा-खड़ा कुछ क्षणों तक सोचता रहा कि वह अन्दर जाए या न जाए। गुरुद्वारे के अन्दर उसका बाप भी था। कभी वह अपने बाप के जूतों की ओर देखता और कभी राजकौर के सलीपरों की ओर।

गांव में समाचार फैल चुका था कि ज़मींदार ने अपने बेटे को घर से निकाल दिया है। उसे ख्याल आया कि जब वह गुरुद्वारे के अन्दर जाएगा तो लोग किस भावना, किस दृष्टि से उसकी ओर देखेंगे। वह बाहर ही रुक गया। उसे ऐसा लगा मानो सारे जूते मुंह उठाकर उसकी ओर देख रहे हैं और हंस रहे हैं और कह रहे हैं 'यह ज़मींदार का बेटा है जिसे इसके बाप ने घर से निकाल दिया है।' वह जूतों की व्यंग्य और परिहास-पूर्ण दृष्टि को सहन नहीं कर सका और तुरन्त वहां से चल पड़ा। चलते समय उसने एक लम्बी सांस ली, राजकौर के सलीपरों को आकुलतापूर्वक अन्तिम बार देखा और गांव को सदा के लिए त्याग दिया।

अब त्रिलोचन के लिए गॉर्डन कॉलिज रावलपिंडी में पढ़ाई जारी रखना असम्भव हो गया। वह लाहौर चला आया। चित्रकला में उसे अच्छी रुची थी। लाहौर में वह सरदार गुरपालसिंह कर्मशियल आर्टिस्ट के पास नौकर हो गया। वह काम भी करता रहा और आगे काम भी सीखता रहा। फिर वह लाहौर से बम्बई चला गया, क्योंकि बम्बई एक अच्छे कर्मशियल आर्टिस्ट के लिए अधिक विस्तृत क्षेत्र था।

बम्बई में थोड़े ही दिनों में उसका काम चमक उठा। अब आठ साल से वह बम्बई में ही है। यहीं उसने माला नाम की एक मराठी लड़की से शादी कर ली। माला से उसके चार बच्चे हैं। अपने गांव को अब वह भूल-सा गया है। परन्तु कभी-कभी किसी गांव का चित्र बनाते समय उसके मस्तिष्क में राजकौर के सलीपर उभर आते हैं, और वह सोचता रह जाता है कि न जाने वे छोटे-छोटे सलीपर आज कहां हैं, और किसकी दहलीज़ पर पड़े हैं। आज वह स्वयं दूसरा, पराया है, और उसकी दहलीज़ में किसी और के सलीपर पड़े हुए हैं। परन्तु इससे क्या होता है? घाव भर जाता है, परन्तु उसका निशान तो रह जाता है। किसी की स्मृति को मस्तिष्क से बाहर निकाल फेंकना तो अपने वस की बात नहीं है।

इसलिए जब मां ने बेटे से केसरिया चावलों के बारे में पूछा तो बेटा सिर हिलाकर चुप हो गया। उसने अचम्भे से दो-एक क्षणों के लिए अपनी मां की ओर देखा—कितने आश्चर्य की बात है कि मां को केसरिया चावल तो याद हैं किन्तु बेटे का घर से निकाला जाना याद नहीं। परन्तु वह अपनी मां की मानवीय दुर्बलता को अच्छी तरह जानता था, इसलिए उस समय चुप हो रहा। मां ने धीरे-धीरे सिर हिलाया और अपनी बहू की ओर देखकर कहने लगी—

"माला! तू मराठी लड़की है। तू हमारे गांव के चावलों की सुगन्ध को क्या जाने? तूने हमारे बस्सी की बासमती कभी खाई होती तो मैं तुझसे बात करती।"

माला ने जलकर कहा, "हां मांजी, हमने न तुम्हारा गांव देखा, न तुम्हारे चावल खाए। अब हम क्या जानें कि कोई सच कहता है या झूठ।"

मां को पिछला वाक्य सुनकर फिर क्रोध आ गया। उसने बिगड़कर कहा, "अच्छा! तो मैं झूठी हूं? और तू सच्ची है? हां ठीक है, मैं झूठी हूं और तू सच्ची है; क्योंकि तू घर वाली है और मेरा अब कोई घर नहीं है। पर करूं क्या, अब वे खेत सचमुच मेरे नहीं हैं। बिजली पड़े इन

पाकिस्तानी चावल-चोरों पर जिन्होंने मेरे चावल मुझसे छीन लिए, अन्यथा मुझे क्या आवश्यकता पड़ी थी कि मैं इस 'एगड़े-तेगड़े' करने वाली के घर आती।

माला ने अंगुलियां नचाकर कहा, "वाह! मेरे एगड़े-तेगड़े को बुरा बताती हो, और अपने 'एत्थे-उत्थे' को भूल जाती हो। यह 'एत्थे-उत्थे' क्या है? पंजाबी भाषा तो बिल्कुल जंगलियों की भाषा है।"

मां ने चिल्लाकर कहा, "और तेरी मराठी भाषा क्या है? ऐसा लगता है जैसे मुंह में रोड़े डालकर बोल रहे हों।"

"रोड़े पड़ें तुम्हारे मुंह में।"

"तेरे मुंह में!"

माला और सरदारनी दोनों उठ खड़ी हुईं और गुत्थमगुत्था होने ही वाली थीं कि त्रिलोचन बीच में आ गया। वह मां और पत्नी दोनों को डांटने लगा। उसके बच्चे अपनी मां और दादी को लड़ते और अपने बाप को ऊंचा-ऊंचा बोलते देखकर रोने लगे, और छोटी लड़की राजकौर तो बहुत ही डर गई। (त्रिलोचन ने अपनी छोटी बेटी का नाम राजकौर रखा था। प्रेम किस तरह रूप बदलता है, प्रेयसी की चाहत किस तरह बेटी के स्नेह में बदल जाती है—यह अध्ययन करने के लिए बड़ा दिलचस्प विषय है)।

त्रिलोचन ने अपनी नन्ही बेटी को गोद में उठाकर पुचकारा, बड़े बेटे को दादी ने संभाला और दोनों बीच वाले बच्चे माता की साड़ी पकड़कर रोने लगे। माला उन्हें प्यार करने लगी। सास-बहू दोनों अपना झगड़ा भूल गईं।

त्रिलोचन ने कहा, "आज प्रदर्शनी में जाना था, इसलिए स्टूडियो बन्द किया, दूसरे सारे प्रोग्राम छोड़े, बच्चों को तैयार किया, और अब तुम दोनों यह झगड़ा करके बैठ गई हो। माला! क्या तुम कभी चुप नहीं बैठ सकतीं? मांजी तो स्वभाव की तनिक तीखी हैं। क्या तुम इनकी

खातिर अपनी ज़बान को थोड़ी देर के लिए दांतों तले दबाकर नहीं रख सकतीं ?"

"अच्छा तो लो।" यह कहकर माला ने अपनी छोटी-सी लाल-लाल ज़बान को दांतों तले दबाकर दिखा दिया। उसकी यह अदा त्रिलोचन को बहुत अच्छी लगी। त्रिलोचन मुस्करा दिया। मां भी मुस्करा पड़ी। माला उनकी जाति या प्रान्त की नहीं थी, परन्तु वह बड़ी लावण्यमय और सुन्दर थी। जब उसने दांतों तले ज़बान दबाकर दिखलाई तो सरदारनी को वह एक बच्ची की भांति अबोध, सुन्दर और प्यारी दिखाई दी। उसकी इस अदा को देखकर मां अपनी हंसी को न रोक सकी—वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। सास को हंसते देखकर माला का व्यवहार भी बदल गया। उसने सास के पांव छुए, और सास ने उसे तुरन्त गले से लगा लिया और भर्राए हुए लहजे में बोली, "वाह गुरु तेरा सुहाग बनाए रखे ! तू मेरी एक ही वहू है, मुझसे मत लड़ा कर।"

"मैं कहां लड़ती हूं," माला अपने-आपको सास के आंचल में छुपाते हुए बोली।

त्रिलोचन ने कहा, "अच्छा तो मां जी, अब जल्दी से खाना खा लो। प्रदर्शनी के लिए देर हो रही है।"

मां ने कहा, "नहीं त्रिलोचन ! मैं प्रदर्शनी देखने नहीं जाऊंगी।"

त्रिलोचन ने कहा, "बड़ी अच्छी प्रदर्शनी है मांजी ! रूस, चीन, चैकोस्लोवाकिया, पोलैंड, हंगरी और अन्य दूसरे देशों में, जहां लोगों ने नया जीवन शुरू कर रखा है, उन सबका हाल इस प्रदर्शनी से मालूम हो जाता है।"

मां ने पूछा, "नये जीवन से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?"

त्रिलोचन ने कहा, "तात्पर्य यह है कि कुछ देशों में लोगों ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद अपना जीवन बड़ा अच्छा बना लिया है। प्रदर्शनी में यही बात दिखाई गई है। उदाहरण के तौर पर चीन को लो। रूस तो खैर एक बहुत उन्नत देश है। परन्तु चीन को तो स्वतंत्रता प्राप्त किए दो बरस

ही हुए हैं। उनकी प्रदर्शनी देखो तो बड़ा आश्चर्य होता है कि ये लोग इतने थोड़े-से समय में कहां से कहां पहुंच गए हैं।"

मां ने इन्कार में सिर हिलाकर कहा, "यह कैसे हो सकता है ? हम लोग स्वतन्त्रता के बाद चार बरस तक कुछ नहीं कर सके। अब तक वही भूरे मोटे भद्दे चावल खा रहे हैं। चीनी लोग कैसे इतनी जल्दी आगे बढ़ सकते हैं ? क्या उनके चार हाथ या चार पांव हैं ? क्या बात करते हो तुम भी !"

"नहीं मां," त्रिलोचन ने समझाते हुए कहा, "चीन के लोगों का काम करने का ढंग हमसे अलग है। वहां पर सचमुच लोगों ने राज का काम अपने हाथ में ले लिया है। उन्होंने ज़मींदारी समाप्त करके सारी धरती को किसानों में बांट दिया है जिसका परिणाम यह है कि वहां के सारे किसान सफ़ेद चावल खाते हैं।"

"तो फिर सीधी तरह क्यों नहीं कहता कि चीन वाले भी पाकिस्तान वालों की तरह चावल-चोर हैं, हमारे चावल छीनकर स्वयं खाते हैं। मैं ऐसे चावल-चोरों की प्रदर्शनी में कभी नहीं जाऊंगी।"

त्रिलोचन ने कहा, "मां, चीन और पाकिस्तान में बहुत अन्तर है। पाकिस्तान में तेरी ज़मींदारी पैंदाखां और लालखां में नहीं बटी, उसे तो जालंधर के पठान शाहनवाज़ खां के नाम कर दिया गया है। केवल ज़मींदारी का नाम बदला है, ज़मींदारी का सिस्टम नहीं बदला। केसरिया चावल वाले अब भी उसी तरह मोटे भूरे चावल वालों पर शासन कर रहे हैं। जो यहां नवाब थे वे वहां भी नवाब हैं, जो वहां राजा थे वे यहां आकर भी राजा रहे। लेकिन चीन के लोगों ने हमारी तरह धोखा नहीं खाया। उन्होंने तो नवाबी और ज़मींदारी को सिरे से समाप्त कर दिया।"

मां आखिर परास्त हो गई। उसने कहा, "अच्छा चल। मैं भी देख आती हूं, तू क्या दिखाना चाहता है। और फिर जब घर के सब आदमी जा रहे हैं तो मैं ही यहां अकेली बैठकर क्या करूंगी ?"

माला ने कहा, "हमारी पड़ौसिन पुष्पा नागरत्ना भी चल रही है। उसे भी साथ ले लीजिए।"

प्रदर्शनी में पहुंचकर पुष्पा नागरत्ना और उसका पति रूसी प्रदर्शनी देखने चले गए। रूसी प्रदर्शनी वाला भाग सबसे भव्य और सजा हुआ था और माला की इच्छा थी कि पहले रूसी प्रदर्शनी को ही देखा जाए। पर मां सबसे पहले चीनी प्रदर्शनी देखने का अनुरोध करने लगी। वह कहने लगी, "मैं भी तो देखूं, इन चीनी लोगों ने दो ही बरसों में किस तरह इतनी उन्नति कर ली है। मुझे तो बिल्कुल विश्वास नहीं होता। मैं तो सबसे पहले चीनी प्रदर्शनी देखूंगी।"

त्रिलोचन अपनी मां, पत्नी और बच्चों को लेकर चीनी-घर में दाखिल हुआ। वह धीरे-धीरे हर सैक्शन (विभाग) में से निकलता हुआ मां को हर बात समझाता जा रहा था—

"देखो मां, यह चीन का कोयला है, यह कच्चा लोहा। ये दोनों मनचूरिया की खानों से निकाले जाते हैं। मनचूरिया चीन में है। चीन में लोहे और कोयले की बड़ी-बड़ी खानें हैं।"

मां ने कहा, "हमारे देश में भी तो लोहे और कोयले की बड़ी-बड़ी खानें हैं।"

त्रिलोचन ने कहा, "यह देखो, ये चीन के बरतन कितने सुन्दर हैं!"

मां ने कहा, "पर हमारे मुरादाबाद के बरतन इनसे कम सुन्दर नहीं होते।"

त्रिलोचन ने कहा, "ये चीन के कपड़े—रेशम के कपड़े, सूत के कपड़े, यह देखो चीनी ज़री का काम।"

मां ने कहा, "पर हमारे यहां तो एक से एक बढ़िया रेशमी और सूती कपड़ा तैयार होता है। और बनारसी ज़री के मुकाबले का काम तो दुनिया-भर में नहीं होता।"

"यह देखो, धान और गेहूं की तीलियों का बना हुआ सामान—

कितनी सुन्दर, पतली-पतली चटाइयां हैं ! और ये तीलियों की टोपियां, बक्स, जूते।"

मां ने क्रोध से कहा, "पर इसमें नई कौन-सी बात हुई ? हमारे देश के गांव-गांव में ऐसी चीज़ें बनती हैं।"

"और यह देखो कागज़ का सामान—यह टेबल-लैम्प···।"

"हुंह ! तुम्हें जैसे पता ही नहीं कि काश्मीर की पेपरमैशी का सामान कितना सुन्दर और फैन्सी होता है। श्रीनगर जाकर देख लो। एक बार मैं सरदारजी के साथ श्रीनगर जाकर स्वयं अपनी आंखों से देख चुकी हूं।"

"यह चमड़े का सामान···।"

"मगर···।"

"फाउण्टेनपेन···।"

"मगर···।"

"मशीनरी···।"

"मगर···।"

त्रिलोचन हर चीज़ दिखाता गया और मां 'मगर' कहकर टोकती गई। वह उन सब चीज़ों को देखकर बीच-बीच में अपने निचले होंठ का कोना गिराकर कहती गई—"मगर हमारे देश में तो ये सब चीज़ें इनसे भी अधिक अच्छी तैयार होती हैं।"

त्रिलोचन का क्रोध अन्दर ही अन्दर बढ़ता जा रहा था। अजीब औरत है यह, कोई चीज़ इसे पसन्द ही नहीं आती। परन्तु वह मां से प्रदर्शनी में कैसे लड़ सकता था ! इसलिए विष का घूंट पीकर चुप हो गया। उसका दिल खट्टा हो गया। उसने मां को चीज़ें दिखानी छोड़ दीं, और चुपचाप अपने कुटुम्ब के साथ-साथ चलने लगा। थोड़ी देर में ये लोग चीनी-घर के अन्तिम भाग में आ पहुंचे। सहसा मां के होंठों से खुशी की एक चीख निकल गई। त्रिलोचन ने देखा कि वह दोनों हाथ फैलाए आगे दौड़ी जा रही है।

माला ने घबराकर अपनी सास की ओर देखा कि बात क्या है। और फिर दूसरे ही क्षण स्वयं उसके मुंह से खुशी की एक चीख निकल गई। वह भी अपने पति और बच्चों को छोड़कर अपनी सास के पीछे-पीछे दौड़ गई।

सामने हज़ारों मन मकई, हज़ारों मन गेहूं और हज़ारों मन चावल के बड़े-बड़े ढेर लगे हुए थे। इतने बड़े ढेर माला ने तो खैर कभी भी नहीं देखे थे, क्योंकि वह बम्बई के चावलों में पली थी; परन्तु मां ने भी, जिसकी अपनी ज़मींदारी रह चुकी थी और जो भारत के 'अन्न के कोठे' (पंजाब) में पैदा हुई थी, बढ़ी, पली और बूढ़ी हुई थी, अपने जीवन में आज तक अनाज के इतने बड़े पहाड़-से ढेर नहीं देखे थे। उसने बच्चों की खुशी से अपना हाथ, कुहनियों तक, चावल के चमकते हुए ढेर में घुसा दिया। हां, ये वही बारीक, महीन, पतले, बांके चावल थे जिनके लिए उसकी आत्मा तरस गई थी। पर क्या सचमुच ये चावल हैं? मां को विश्वास न होता था। वह बार-बार अपनी मुट्ठियों में चावलों को भर-भरकर उछालने लगी—जैसे कोई मां आनन्द-विभोर होकर अपने बच्चे को हवा में उछालती है; मां आज चीनी चावलों से इसी तरह प्यार कर रही थी, क्योंकि आज जैसे वह अपने खेतों में वापस पहुंच गई थी, आज उसके सामने गांव में धान की फसल कट रही थी, औरतें गीत गा रही थीं—नये जीवन के। मां की आंखों से आनन्द के आंसू बहने लगे, क्योंकि आज उसे अपने चावल मिल गए थे।

त्रिलोचन ने देखा कि केवल उसकी मां ही अनाज के इन ढेरों के सामने मौजूद नहीं है, वरन् बम्बई की सैकड़ों माएं और बहुएं अपने दिलों की भूख लिए हुए वहां खड़ी थीं। इनके मन में अजीब भावनाएं हिलोरें ले रही थीं। राशन की दुकान के सामने तेज़ चिलचिलाती हुई धूप में लम्बी लाइन में घंटों खड़े रहना, थके हुए, उदास और आकुल कदमों से धीरे-धीरे कछुओं की सी गति से दुकान की ओर बढ़ना, फटे-पुराने राशनकार्ड जिन पर उनके नाम अपराधियों की भांति लिखे रहते हैं, और अन्त में,

घण्टों की प्रतीक्षा और तपस्या के बाद एक 'यूनिट' चावल या दो 'यूनिट' गेहूं ! और जब वे इस मुट्ठी-भर अनाज को अपनी झोली में भर रही होतीं, तो साथ-साथ सोचती जातीं कि यह 'एक सप्ताह का राशन' सप्ताह में कितने दिन चलेगा। इस मुट्ठी-भर अनाज से वे किस-किसकी भूख मिटाएंगी—अपने बच्चों की ?—अपने पति की ?—अपने बूढ़े ससुर की ? राशन देने वाले क्या यह नहीं जानते कि बच्चों को तो बहुत भूख लगती है, वे दिन में एक-दो बार नहीं बल्कि दस बार खाना मांगते हैं—क्योंकि उनके हाथ-पांव बढ़ना चाहते हैं, आंखें चमकना चाहती हैं, कलियां फूल बनना चाहती हैं। परन्तु राशन की दुकान पर केवल निश्चित 'यूनिट' मिलते हैं। वहां खुराक नहीं मिलती, थोड़ी-थोड़ी भूख मिलती है, और धीरे-धीरे बढ़ती हुई मौत मिलती है—एक यूनिट या दो यूनिट।

चीनी अनाज के आकाश को छूते हुए ढेरों के पास खड़ी हुई औरतों के हृदय इन कटु और भयानक यादों से घुटे हुए थे। त्रिलोचन ने देखा कि एक बूढ़ी औरत ने बेबस होकर अपने गाल गेहूं के ढेर से लगा दिए और अपनी आंखें बन्द कर लीं। उसके चेहरे पर बच्चों जैसा दैवी, अलौकिक सन्तोष छा गया, जैसे उसने अपने जीवन के सारे राशनकार्ड फाड़ डाले हों और एक छलांग लगाकर उस जीवन में पहुंच गई हो, जहां मानव का परिश्रम गेहूं की सुनहरी विपुलता उत्पन्न करता है और मकई की शहद जैसी मिठास को हर तरसे हुए होंठ पर फैला देता है।

त्रिलोचन ने बड़े हर्ष से अपनी पत्नी की ओर देखा, जो अपने बच्चों को दूसरे बच्चों के साथ अनाज के ढेरों के चारों ओर नाचते हुए देख रही थी। उस समय सभी लोग—औरतें, बूढ़े, बच्चे—आनन्द और अलौकिक सन्तोष की एक ही भावना से ओत-प्रोत दिखाई देते थे। त्रिलोचन ने देखा कि इस समय उनके चेहरों पर वे सारे सपने उभर आए हैं जिनको उन्होंने असम्भव समझकर अपने मन के किसी अंधेरे कोने में कैद कर रखा था। इस समय उन सब लोगों की निगाहें अन्ततः नये चीन को प्रणाम कर रही

थीं--उस नये जीवन को प्रणाम कर रही थीं, जिसने अपने सम्मिलित प्रयास और परिश्रम से जीवन का साकार रूप, ढेर का ढेर उनके सामने खड़ा कर दिया था।

दूर-दूर खड़े हुए चीनी-घर के चीनी कर्मचारी भी हर्ष-विभोर होकर मुस्करा रहे थे, जैसे कह रहे हों—'जो कुछ हमने किया है वह तुम भी कर सकते हो। तुम्हारी आंखों के सपने भी सच्चे हो सकते हैं। किन्तु ये सपने केवल देखने से सच्चे नहीं हो जाते, पहले इनमें हल चलाना पड़ता है, फिर इनमें अपना लहू बोना पड़ता है, तब कहीं जाकर सपनों की फसल तैयार होती है।'

रात के नौ बजे वे लोग अपने घर पहुंचे। रास्ते-भर मां बिल्कुल चुप रही। त्रिलोचन ने भी अपनी मां से कोई बात नहीं की। वह केवल कभी-कभी कनखियों से अपनी मां को देख-भर लेता था, और हर बार वह अपनी मां को किसी गहरी सोच में डूबा हुआ पाता था। घर पहुंचकर माला ने किवाड़ खोले, बत्ती जलाई और फिर बच्चों की तरह सास से पूछने लगी, "इस समय क्या पकाऊं जो जल्दी से तैयार हो जाए? बच्चे बहुत भूखे होंगे।"

मां ने कहा, "वही भूरे चावल पका लो। जल्दी तैयार हो जाएंगे।"

माला ने कहा, "आप भूरे चावल खा लेंगी? आप नाराज़ तो न होंगी?"

"नहीं," मां ने बड़े विश्वास से कहा।

माला मुस्कराने लगी। बोली, "मांजी! यदि मैं आपको आज सफेद चावल खिलाऊं तो मुझे क्या इनाम देंगी?"

यह कहकर माला ने अपना पर्स खोला और उसे मेज़ पर उलट दिया। चीनी चावलों के दाने मेज़ पर बिखर गए—एक मुट्ठी चावल!

त्रिलोचन चकित होकर माला की ओर देखने लगा।

इतने में उसका बड़ा बेटा आगे आया, उसने अपनी जेबों में से दो मुट्ठी चावल निकालकर मेज़ पर डाल दिए। फिर दूसरा बेटा डरते-डरते

आगे बढ़ा, और उसके बाद तीसरा बेटा। दोनों ने अपनी जेबों से चावल की मुट्ठियां निकालकर मेज़ पर डाल दीं। मेज़ पर सफेद चावलों की एक छोटी-सी ढेरी बन गई। फिर छोटी लड़की राजकौर ने अपने नन्हे-नन्हे हाथों से अपनी छोटी-सी फ्राक की छोटी-सी जेब को टटोला, उसमें से अपनी नन्ही-सी मुट्ठी भरकर सफेद चावल निकाले और मांजी को दिखाकर बोली, "मैं भी तावल लाई हूं, देखो मांजी, मैं भी तावल लाई हूं।"

इन सब बच्चों की निगाहें तथा माला और त्रिलोचन की निगाहें मां पर लगी हुई थीं। मां इन निगाहों का बोझ न सहार सकी। उसका चेहरा एकदम लाल हो गया। उसकी आंखें स्वतः झुक गईं। उसकी अंगुलियां बेचैन हो उठीं। उसने अपनी बेचैन अंगुलियों से अपने दुपट्टे के पल्लू को टटोला और पल्लू खुल गया और उसमें से एक मुट्ठी-भर चावल मेज़ पर बिखर गए। त्रिलोचन ने मुस्कराकर कहा, "मां! तुम भी? चावल-चोर···!!"

मां सर झुकाकर चुप हो गई। वह बहुत देर तक चुप रही, फिर धीरे से अपना सर उठाकर बेटे से कहने लगी—

"आज मुझे मालूम हो गया है कि तुम लोग चावल-चोर नहीं हो बल्कि चावल पैदा करने वाले हो, और थोड़े चावलों को बहुत-से चावलों में और भूरे चावलों को सफेद चावलों में बदल देने वाले हो। इसपर भी यदि दुनिया तुम्हें चावल-चोर कहती है तो कहने दो। मैं आज से तुम्हारे साथ हूं। वाहगुरु तुम्हें फतह दे!"

यह कहकर मां ने त्रिलोचन को गले से लगा लिया और उसका माथा चूम लिया।

त्रिलोचन का चेहरा खिल उठा। माला भी खुशी से मुस्कराने लगी।

बच्चे सफेद चावलों को मेज़ पर देख-देखकर खुश हो रहे थे, चीख रहे थे और ताली बजा रहे थे। यह शोर सुनकर माला की पड़ोसिन पुष्पा नागरत्ना भी यह देखने के लिए अन्दर चली आई कि यह किस बात की खुशी मनाई जा रही है।

माला ने कहा, "आज हमारे घर एक चीनी अतिथि आया है।" यह कहकर माला ने मेज़ पर पड़े हुए सफेद चावलों की ओर संकेत किया।

नागरत्ना ने इन चावलों की ओर देखा; फिर माला की ओर देखा और मुस्कराकर बोली, "आज यह अतिथि हमारे घर भी आया है।"

तीन

औरतों का इत्र

(एक फैन्तेसी)

कहानी सुनानेवाले ने कहा—

"और उस औरत के पसीने से भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी।"

सेठ मोहनलाल बकबेरिया, जो केवल खद्दर पहनते थे, केवल व्हिस्की पीते थे और केवल ब्लैक मार्केट का धंधा करते थे, सहसा कहानी सुनते-सुनते रुक गए। उन्होंने कहानीकार नरोत्तम भाई पांड्या को बीच में टोक दिया—

"अबे पांड्या! यह तूने क्या कहा?"

"जी, मैंने कहा कि उस औरत के पसीने से भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी।"

"क्या औरत के पसीने से खुशबू निकलती है?" बकबेरिया ने चकित होकर पूछा।

"जी हां, विश्वास न हो तो मिस प्रेमावती से पूछ लीजिए।"

मिस प्रेमावती कुछ हंसी, कुछ शरमाई, परन्तु सेठ मोहनलाल बकबेरिया ने आगे बढ़कर उसे सूंघ ही लिया। मिस प्रेमावती ने एक हल्का-सा सेंट लगा रखा था। सेठ के नथनों में वही हल्की-सी, बेनाम-सी सुगन्ध भर गई।

सेठ खुश होकर बोला, "हां, आ तो रही है। परन्तु क्या सभी औरतों

के पसीने से ऐसी सुगन्ध आती है ?"

"सभी से तो नहीं," पांड्या ने दार्शनिकों की भांति समझाते हुए कहा, "केवल कुंवारी लड़कियों के पसीने में यह बात होती है।"

मिस प्रेमावती का मुंह खुशी से खिल उठा। सेठ भी बहुत खुश हुए। वे उन दिनों एक फिल्म बनाने की सोच रहे थे और इसी सिलसिले में वे नरोत्तम भाई पांड्या से कहानी सुन रहे थे। उन्होंने मिस प्रेमावती को अपनी फिल्म की नायिका के रूप में चुना हुआ था।

नरोत्तम भाई पांड्या ने कहा, "सेठ साहब, आगे सुनाऊं ?"

सेठ मोहनलाल बकबेरिया ने मेज़ की दराज़ में से एक चैक-बुक निकाली और पांच सौ रुपए का एक चैक कहानी लेखक को देते हुए बोले, "तुम्हारी कहानी बहुत अच्छी है, एकदम शानदार। परन्तु शेष कहानी कल सुनेंगे। वह सब ठीक हो जाएगा। और यदि कहानी कहीं ठीक न भी हुई तो हम स्वयं ठीक कर लेंगे। इस समय तुम जाओ।"

सेठ साहब ने मिस प्रेमावती को भी संकेत किया। वह और पांड्या दोनों नमस्ते कहकर चल पड़े।

सेठ साहब कुछ देर के लिए कुर्सी के अन्दर धंस गए और किसी गहरी सोच में डूब गए।

रात को सेठानी भोजन का थाल सजाकर रसोई से बाहर निकलीं और चौकी पर थाल पटककर बोलीं, "लो, खा लो।"

सेठानी के बोलने का ढंग सदा से कठोर और कटु था। माथे पर सदा बल रहने से उनकी एक आंख ऊंची और दूसरी नीची दिखाई देने लगी थी। सेठ भी सेठानी से सदा इसी तीखे और कटु लहजे में बात करते थे। परन्तु आज वे सेठानी को देखकर मुस्करा दिए। उन्होंने सेठानी को हाथ

से पकड़कर अपने पास बिठा लिया। वास्तव में वे उसे सूंघना चाहते थे।

सेठानी ने अपने माथे से पसीना पोंछकर कहा, "ऐ है! क्या करते हो? कोई देख लेगा तो क्या कहेगा?"

सेठ ने अपने नथनों से सूं-सूं करने के बाद कहा—

"सेठानी, तुम्हारे पसीने से तो दुर्गन्ध आती है।"

"ऐ है! तुम्हारी अकल को क्या हुआ है? बुड्ढे-ठेरे हो गए, क्या तुम्हें इतना भी पता नहीं कि पसीने से दुर्गन्ध नहीं तो क्या सुगन्ध आएगी?" सेठानी ने तनिक परे हटकर कहा।

सेठजी बोले, "सेठानी, जब तुम कंवारी थीं तो क्या तुम्हारे पसीने से सुगन्ध नहीं आती थी?"

सेठानी बोलीं, "लो, अब कब की बात करने लगे हो तुम! सात साल की थी जब मैं ब्याही गई थी। तब से सारी आयु रसोई में काट दी। मैं क्या जानूं सुगन्ध-वुगन्ध को और आज ये तुम कैसी बात कर रहे हो? फिल्म-कम्पनी खोलकर कहीं किसी फिल्म-अभिनेत्री के चक्कर में तो नहीं आ गए? याद रखना, वह झाड़ मारूंगी कि···"

सेठ ने अपने दोनों हाथ स्वतः ऊपर उठा दिए और जल्दी से बोले, "नहीं-नहीं सेठानी! क्या बात करती हो? मैं तो यों ही पूछ रहा था।"

इतना कहकर उन्होंने जल्दी से भोजन की ओर हाथ बढ़ाया। परन्तु सेठानी ने देखा कि भोजन करते-करते सेठ का हाथ कई बार सहसा रुक गया; कौर हाथ में ही रहा, मुंह तक नहीं गया।

यह देखकर सेठानी चिल्लाकर बोलीं, "क्या सोच रहे हो? भोजन करते समय कुछ सोचना नहीं चाहिए।"

सेठ साहब चौकन्ने हो गए, जैसे कल्पना के संसार से फिर सेठानी के संसार में पहुंच गए हों। वे एकदम बोल उठे, "कुछ नहीं, कुछ नहीं, मैं तो धीरे-धीरे खाकर एक-एक कौर का स्वाद ले रहा हूं।"

"कौर का स्वाद ? क्यों, वही रोज़ की आलू की भाजी ही तो है।" इतना कहकर सेठानी पानी का गिलास लाने के लिए रसोई की ओर चल दीं।

दूसरे दिन नरोत्तम भाई पांड्या कहानी सुनाने के लिए नियत समय पर सेठ के कार्यालय में पहुंचा। वहां सेठ और मिस प्रेमावती पहले से मौजूद थे। पांड्या ने अपना चमड़े का थैला खोला, उसमें से कहानी निकाली और वह उसे सुनाने ही लगा था कि सेठ ने उसे टोककर कहा, "सुनो पांड्या, रात को मैंने तुम्हारी कहानी पर बहुत सोचा, बहुत सोचा और एक तरकीब मेरे दिमाग में आई है।"

"फर्माइए।"

पांड्या और मिस प्रेमावती दोनों ध्यानपूर्वक सुनने के लिए तैयार होकर बैठ गए।

सेठ ने कहा, "मैंने सोचा है कि क्यों न तुम्हारी कहानी की फिल्म तैयार करने के साथ-साथ औरतों का इत्र भी तैयार किया जाए ?"

"औरतों का इत्र ?" प्रेमावती आश्चर्यचकित होकर चीख उठी।

"हां, हां।" सेठ बकबेरिया एकदम हर्षविभोर होकर ज़ोर से बोले, "यदि औरतों के पसीने से सुगन्ध निकलती है तो फिर इस सुगन्ध से इत्र भी तैयार किया जा सकता है। जैसे गुलाब, मोतिया, खस से इत्र निकलता है और उसी तरह मैं औरतों के पसीने से इत्र तैयार करूंगा। मैं यह इत्र तैयार करने के लिए एक बहुत बड़ा कारखाना खोलूंगा। उसपर दस करोड़ की पूंजी लगाऊंगा, उसमें हज़ारों-लाखों कुंवारी लड़कियों को नौकर रखूंगा, उन्हें दिन-भर धूप में खड़ा करके उनका पसीना निकलवाऊंगा और फिर उस पसीने से इत्र कशीद किया जाएगा।"

"और यदि किसी दिन धूप न हुई तो ?" पांड्या ने प्रश्न किया।

"वह भी मैंने सोच लिया है।" सेठ की आंखें आनन्दविभोर होकर चमक रही थीं। "मैं अमरीका से बड़े-बड़े आर्क लैम्प मंगवाऊंगा और उनकी गरम और तेज रोशनी में उन लड़कियों पर डालूंगा जो मेरे कार-

ख़ाने में नौकर होंगी। मैं गरमियों के दिनों में भी उन्हें ऊन की वर्दियां पहनाऊंगा ताकि पसीना खूब खुलकर शरीर में से बह सके। बरसात की झड़ी की भांति पसीना फूट-फूटकर बहेगा—एक पहाड़ी झरने की भांति—और जितना अधिक पसीना बहेगा, उतना ही अधिक इत्र तैयार हो सकेगा। और मेरा कारखाना एक की बजाय दो शिफ्टों में चलेगा—एक दिन को धूप की पाली और दूसरी रात को बिजली की रोशनी की पाली। और बड़े ठाठ से काम होगा। एक महीने में एक लड़की के पसीने से कम से कम एक सेर इत्र तैयार हो सकेगा। मैंने सब हिसाब लगा लिया है। यदि मैं एक लाख कुंवारी लड़कियों का कारखाना खोलूं और उनके पसीने से इत्र तैयार करूं, तो दो साल में मेरी पूंजी वापस आ जाएगी और तीसरे साल मुझे कम से कम तीन करोड़ रुपये की आमदनी होगी।"

"वह कैसे ?" प्रेमावती ने भौचक्की होकर पूछा।

"विज्ञापनों द्वारा," सेठ ने चमककर उत्तर दिया, "आज की दुनिया में विज्ञापनों द्वारा सब कुछ हो सकता है। और फिर औरतों का इत्र ! मिस प्रेमावती, तुम स्वयं सोचो, वह कौन-सा मर्द है जो औरतों का 'इत्र' खरीदना पसन्द न करेगा ! मुझे अफसोस तो यही है कि मर्दों के शरीर से वैसी सुगन्ध नहीं निकलती, अन्यथा औरतों का इत्र मर्दों के लिए और मर्दों का इत्र औरतों के लिए बेचता, और दुगना लाभ उठाता ! परन्तु जो काम हो ही न सके उसका अफ़सोस करना बेकार है। तो खैर, मैंने कम्पनी के प्रोस्पैक्टस छपने दे दिए हैं। अगले सप्ताह कम्पनी स्थापित हो जाएगी, और उसके हिस्से सबके सब मेरे तथा मेरे रिश्तेदारों के होंगे। कुछेक विज्ञापनों की रूपरेखाएं मैंने सोच ली हैं। पांड्या, तुम राय दो कि यह विज्ञापन कैसा रहेगा···?"

"अब कुंवारियों के पीछे भागने की आवश्यकता नहीं है। कुंवारी लड़कियों के इत्र का प्रयोग कीजिए।"

एक और विज्ञापन भी सुन लो—

"विवाह के खर्च से बचिए। केवल कुंवारी औरतों के इत्र का प्रयोग कीजिए।"

"देखिए, हमारे देश में हज़ारों-लाखों नवयुवक ऐसे हैं जो अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण विवाह नहीं कर सकते और इसलिए व्यभिचार और कुमार्ग की ओर चल पड़ते हैं। उन सब नवयुवकों के लिए औरतों का इत्र अचूक ओषधि का काम देगा—एक ईश्वरीय देन। बस, ज़रा-सा इत्र अपने कपड़ों पर लगा लिया और औरत की सुगन्ध से झूमते-झामते सिनेमा देखने चले गए।"

"क्यों, क्या खयाल है ? मैं तो सोचता हूं, मैं व्यर्थ में इस सिनेमा-कम्पनी के चक्कर में क्यों पड़ूं ? केवल यह इत्र बनाने का कारखाना ही क्यों न खोल लूं ?"

"ऐसा न कीजिए," कहानी-लेखक पांड्या जल्दी से बोला, 'गज़ब हो जाएगा !"

"क्या गज़ब हो जाएगा ?"

"अरे सेठ साहब, आपकी फिल्म-कम्पनी से आपके कारखाने को लाखों का लाभ होने वाला है।"

"वह कैसे ?"

"देखिए—आर्क-लैम्पों का आप अपने कारखाने में प्रयोग करेंगे। वही आर्क-लैम्प हमारी फिल्म-कम्पनी में भी काम में आ जाएंगे। फिल्म बनाने के लिए आर्क-लैम्पों की बहुत आवश्यकता होती है। बस, उधर कारखाने में आप औरतों का इत्र निकलवाइए, और इधर फिल्म-कम्पनी में फिल्म-अभिनेत्रियों का इत्र निकलवाइए—नरगिस का इत्र, मधुबाला का इत्र, नलिनी जयवन्त का इत्र। मैं कहता हूं, आप इसे भारत तक ही क्यों सीमित रक्खें ? आप एक अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म बनवाइए और ग्रेटा-गार्बो का इत्र निकलवाइए। भगवान् की कसम खाकर कहता हूं, एक लाख रुपये तोले में बिकेगा। फिल्म अलग तैयार होगी, और फिल्म बनाते समय तेज़ रोशनी के सामने खड़े होने से अभिनेत्रियों के जो पसीना निकलेगा,

उससे इत्र अलग तैयार होगा। एक पंथ दो काज। लोग फिल्म देखने जाएंगे—नरगिस का इत्र लगाकर नरगिस की फिल्म देखने, और मधुबाला का इत्र लगाकर मधुबाला की फिल्म देखने। अभी मैंने उस दिन एक समाचारपत्र पढ़ा था कि मधुबाला का एक प्रेमी अपने मित्रों के बीच में मधुबाला का नाम रटते-रटते मर गया। यदि उसे मधुबाला का इत्र प्राप्त हो जाता तो मधुबाला न सही मधुबाला का इत्र ही सही, वह बेचारा उसीपर सन्तोष कर लेता और उस गरीब की जान तो बच जाती। मैं तो कहता हूं, सेठ साहब, आप यह कम्पनी खोलकर राष्ट्र और देश का बड़ा उपकार करेंगे, सहस्रों नवयुवकों का जीवन बचाएंगे, लाखों व्यक्तियों को दुराचार के गढ़े में गिरने से बचा लेंगे!"

सेठ मोहनलाल बकवेरिया ने अपनी चैक-बुक निकाली और दो हज़ार का एक चैक लिखकर नरोत्तम भाई पांड्या के हाथ में थमा दिया।

सेठ कहने लगा, "तुमने बहुत बढ़िया खयाल दिया है। एकदम नया आइडिया! हम बहुत खुश हुए। हम तुम्हें सदा अपने साथ रखेंगे।"

पांड्या ने चैक जेब में रखकर कहा, "सेठ साहब, एक और आइडिया आया है। आप औरतों को कारखाने में तो रख ही रहे हैं, तो इस कारखाने से और कई गौण लाभ भी हो सकते हैं।"

'कौन-से?"

"जैसे यह कि आप औरतों के आंसुओं को जमाकर उनकी कुलफी तैयार कर सकते हैं। आंसुओं में से नमक अलग करके औरतों का नमक अलग बेच सकते..."

प्रेमावती, जो अब तक चुप बैठी थी, चिन्तित दृष्टि से सेठ की ओर देखकर बोली, "यह तो स्पष्ट प्रकट है कि आप इस कारखाने में केवल कुंवारी लड़कियों को ही नौकर रखेंगे।"

"हां, क्योंकि सुगन्ध केवल उन्हींके पसीने से निकलती है।"

"परन्तु, यदि कोई लड़की शादी कर ले तो?"

"यह कैसे हो सकता है? मेरे कारखाने की कोई लड़की शादी नहीं

कर सकेगी। पहले तो मैं यह कारखाना केवल भारत में बनाऊंगा, फिर बाद में दूसरे देशों में भी खोल दूंगा। अमरीका में, इंग्लैण्ड में, फ्रांस में— वहां, उन देशों में मेरे इत्र की बड़ी कद्र होगी। यह शर्त तो मैं हर जगह रखूंगा कि मेरे कारखाने की कोई लड़की शादी नहीं कर सकेगी।"

"तो आप संसार की लाखों लड़कियों को शादी से सदा के लिए वंचित कर देंगे।"

"क्या करें ? बिज़नस बिज़नस है।"

मिस प्रेमावती आप ही आप मुस्कराने लगी।

"क्यों मुस्करा रही हो ?" सेठ मोहनलाल बकबेरिया ने पूछा।

"कुछ नहीं जी," प्रेमावती ने धीरे से कहा, "यूं ही कुछ सोच रही थी।"

थोड़ी देर तक कमरे में सन्नाटा रहा। फिर सेठ साहब हंसकर बोले, "भई, और तो सब ठीक है, परन्तु आजकल विज्ञान का युग है। इसलिए इस बात की अच्छी तरह जांच कर लेनी चाहिए कि किस प्रकार की लड़की में कैसी सुगन्ध होती है। किस आयु में यह सुगन्ध अधिक होती है, किसमें कम। इस प्रकार की सब आवश्यक बातों की जांच-पड़ताल और अनुसंधान करने के लिए मैंने एक वैज्ञानिक से बात की है। वह नेशनल लैबारेट्री में नियुक्त था और वहां पांच सौ रुपये मासिक वेतन लेता था। मैंने उसे दो हज़ार रुपया मासिक पर ठीक कर लिया है। उसका नाम डॉक्टर अब्दुल हफीज़ है। वह नौजवान है, पी-एच० डी० है। आशा है, लगन और परिश्रम से काम करेगा। वह बाहर कमरे में बैठा है।"

पांड्या कुछ कहने ही वाला था कि प्रेमावती जल्दी से बोल उठी, "उसे अन्दर बुला लीजिए ना !"

सेठ ने घंटी बजाई, और वैज्ञानिक को अन्दर बुला लिया और उसे सब बात अच्छी तरह समझा दी।

डॉक्टर अब्दुल हफीज़ ने सोचकर कहा, "सेठजी, इस अनुसंधान में छः महीने तो अवश्य लग जाएंगे।"

सेठ ने चिल्लाकर कहा, "आप क्या बात करते हैं? मैं प्रॉस्पैक्टस छपवा रहा हूं, कम्पनी के हिस्से बेच रहा हूं, कारखाने के लिए मशीनों का आर्डर अमरीका में दे रहा हूं, और आप वैज्ञानिक जांच-पड़ताल में छः महीने लगाएंगे! तब तो मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकता। केवल तीन महीने काफी होने चाहिए। तीन महीने के बाद मुझे इसी दफ्तर में मिलिए, यह लीजिए तीन महीने का वेतन।"

सेठ ने छः हज़ार रुपये का चैक वैज्ञानिक के हाथ में थमा दिया। वैज्ञानिक ने हाथ जोड़कर विदा ली और चला गया।

तीन महीने के बाद डॉक्टर अब्दुल हफीज़ ने सेठ के दफ्तर की घण्टी बजाई। सेठ ने उसे तुरन्त ही अन्दर बुला लिया।

सेठ वैज्ञानिक को देखकर चकित रह गया। वैज्ञानिक की आंखों के नीचे गड्ढे पड़ गए थे, दाढ़ी बढ़ आई थी और आधे से अधिक बाल सफेद हो गए थे।

"यह आपको क्या हो गया है?" सेठ ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

मिस प्रेमावती और नरोत्तम भाई पांड्या भी विस्मित होकर वैज्ञानिक को तकने लगे।

डॉक्टर अब्दुल हफीज़ ने कहा, "यह सब कुछ आपकी समस्या के अनुसंधान के सिलसिले में हुआ। जिस दिन से आपने मुझे यह काम सौंपा, मैं उसी दिन से इस काम में जुट गया। सबसे पहले तो मैंने यह अनुसन्धान करने का निश्चय किया कि औरतों के पसीने में कैसी सुगन्ध होती है।

"इसके लिए मैंने सबसे पहले फिल्म-अभिनेत्रियों की ओर रुख किया, और नरगिस का पसीना सूंघने की कोशिश की—उस समय जब कि वह सैट पर काम कर रही थी। उस कम्बख्त ने न कुछ सोचा न समझा, मेरे गाल पर सीधे एक तमाचा रसीद कर दिया।

"फिर मैं वह तमाचा खाने के बाद मधुबाला के यहां गया; परन्तु

उसने मुझसे मिलने से इन्कार कर दिया।

"इसी तरह अन्य फिल्म-अभिनेत्रियों ने भी मेरा अपमान किया। फिर भी मैं कुछेक फिल्म-अभिनेत्रियों का पसीना सूंघने में सफल हो गया। उनकी रिपोर्ट मेरी फाइल में मौजूद है।

"इसके वाद मैंने साधारण कुंवारी लड़कियों की ओर ध्यान दिया। परन्तु कठिनाई यह थी कि ज्यों ही मैं उनका पसीना सूंघने का प्रयत्न करता था, वे चप्पल उतारकर खड़ी हो जाती थीं। एक बार वाज़ार में चलते हुए एक लड़की को सूंघने की कोशिश करते हुए पुलिस ने मुझे पकड़ लिया। एक सप्ताह मुझे हवालात में रखकर पुलिस ने मेरा चालान कर दिया और मजिस्ट्रेट ने मुझे एक सप्ताह कैद का दंड दे दिया। जेल से छूटकर अब सीधा यहीं चला आ रहा हूं।

"परन्तु फिर भी इन कष्टों और आपत्तियों के बावजूद मैंने अपनी रिपोर्ट मुकम्मिल कर ली है। अब तक मैंने छः सौ कुंवारी लड़कियों के पसीने सूंघे हैं और मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि···"

"कि!" सेठ ने बहुत ही आकुलता और विह्वलता के साथ पूछा।

"कि औरतों के पसीने में सुगंध होती ही नहीं।"

"बाप रे!" सेठ की चीख निकल गई।

"न कुंवारी लड़कियों के पसीने में, न विवाहित औरतों के पसीने में। बल्कि उनके पसीने में भी उसी प्रकार की दुर्गन्ध होती है जैसी मर्दों के पसीने में। खैर, फिर मैंने इस बात का अनुसन्धान करना चाहा कि पसीने में दुर्गन्ध क्यों होती है।"

सेठ ने झल्लाकर कहा, "परन्तु मैंने तो तुम्हें सुगन्ध की जांच-पड़ताल करने के लिए नियुक्त किया था न कि दुर्गन्ध के अनुसन्धान के लिए।"

"यह तो ठीक," डॉक्टर बोला, "परन्तु मैंने सोचा कि यदि दुर्गन्ध का ठीक-ठीक पता चल जाए, तो सम्भव है सुगन्ध निकालने का कोई उपाय हाथ लग जाए। परन्तु इसमें भी मुझे असफलता का मुंह देखना पड़ा, क्योंकि औरतों के पसीने में जो तत्त्व होते हैं उनका विवरण यह है—

"औरत का पेट=गन्दा पानी, कुछ विषैले पदार्थ, अमोनिया, कार्बन डाई औक्साइड, सोडियम क्लोराइड इत्यादि।

"और इनमें से किसी पदार्थ में से सुगन्ध नहीं निकल सकती।"

"अरे लोगो ! मैं तो बरबाद हो गया, लुट गया!!" सेठ ने अपनी छाती पर दुहत्थड़ मारकर कहा, "मैंने तो कारखाने का भवन बनाने का ठेका भी दे दिया है, दो करोड़ रुपये में !"

"ठहरिए, ठहरिए," मिस प्रेमावती ने सेठ को सान्त्वना देते हुए कहा। फिर वह बड़ी शान्ति के साथ डॉक्टर हफीज़ की ओर मुड़कर बोली—

"डॉक्टर साहब ! यदि औरतों के पसीने का इत्र नहीं बन सकता तो न सही, उनके आंसुओं का नमक तो बन सकता है:··।"

"इसकी भी मैंने पड़ताल कर ली है," डॉक्टर ने पूरे विश्वास से कहा, "यह नमक अवश्य बन सकता है, परन्तु यह कोई लाभदायक काम नहीं है। मैंने अनुमान लगाया है कि यदि एक लाख औरतों को एक साल तक रुलाया जाए तो उनके आंसुओं से केवल एक छटांक नमक प्राप्त होगा।

"हाय, हाय ! मैं तो बिलकुल ही लुट गया, मर गया। अब तो इस कारखाने से किसी गौण लाभ की आशा नहीं रही। अरे पांड्या के बच्चे ! नमकहराम ! तूने मेरी लुटिया ही डुबो दी। और तुम भी डॉक्टर ! तुम बड़े वैज्ञानिक बने फिरते हो। निकल जाओ तुम दोनों, अभी, मेरे कमरे से बाहर हो जाओ···।"

पांड्या और वैज्ञानिक दोनों वहां से नौ-दो ग्यारह हो गए। कमरे में केवल सेठ साहब और मिस प्रेमावती रह गए। मिस प्रेमावती रह-रहकर मुस्कराती जाती थी।

सेठ ने क्रोध में आकर पूछा,

"तुम क्यों मुस्करा रही हो ?"

"यूं ही कुछ सोच रही थी।"

"क्या सोच रही थी आखिर ?"

मिस प्रेमावती नें मुस्कराकर कहा—

"यही कि अच्छा हुआ प्रकृति ने औरतों के शरीर में सुगन्ध नहीं रखी, अन्यथा आप पूंजीपति लोग तो···"

चार

बापू की वापसी

समय यही कोई साढ़े पांच बजे का होगा। मैं शाम का समाचार-पत्र पढ़कर उठा ही था कि किसीने मेरे कमरे का द्वार खटखटाया। परन्तु मैं उठकर द्वार तक पहुंच भी न पाया था कि चटखनी अपने-आप खुल गई और वह द्वार खोलकर स्वयं अन्दर आ गया। लम्बा, दुबला-पतला मनुष्य था वह। उसने केवल लंगोट बांध रखा था और छाती पर तीन गोलियों के निशान थे। वह लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ मेरे पास आ बैठा और मेरी ओर तनिक झुककर कहने लगा—

"क्या कर रहे थे ?"

"हिसाब कर रहा था।"

"कैसा हिसाब ?"

"यही कि पिछले तीन वर्षों में कितनी वार मज़दूरों की छातियों पर गोलियां चलाई गईं।"

वह हंसकर कहने लगा, "मेरी तीन गोलियां भी गिन लेना।"

मैंने कहा, "वे इस सूची में नहीं आतीं, परन्तु, वैसे हैं वे एक ही नीति का परिणाम।"

उसने हंसकर कहा, "वह मैं सब समझता हूं। खैर, अब तुम जल्दी से उठ बैठो। मैं अपना देश देखना चाहता हूं।"

मैंने कहा, "आपके लिए तो सब दुख-दर्द सदा के लिए समाप्त हो गए हैं। आपको अब हमारे दुख-दर्दों से क्या प्रयोजन ?"

वह बोला, "बात यह है कि मैं बड़े आराम से लेटा हुआ था कि नीचे इस संसार से इतनी चीख-पुकार कानों में पड़ी कि मुझसे रहा न गया। मैंने सोचा, चलकर देखना चाहिए कि क्या मामला है। लोग मुझे क्यों इतना याद कर रहे हैं।"

मैंने कहा, "आपको ठीक सूचना नहीं मिली। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्ग का सूचना-विभाग ठीक तरह से काम नहीं कर रहा है। यहां अब किसी को भी आपकी याद नहीं आती। पहले लोग सिनेमा में आपका चित्र देखकर तालियां बजाया करते थे, फिर राज्य के मन्त्रियों के चित्र देखकर बजाने लगे, और अब वह चाव भी पूरा हो गया है ?"

उसने कहा, "परन्तु मैंने आहों का धुआं उठता देखा था मिलों की बड़ी-बड़ी चिमनियों से···"

मैंने कहा, "वह धुआं वास्तव में 'स्मोक-स्क्रीन' (Smoke-Screen) था—धुएं का काला पर्दा, जिसकी आड़ में मिलों वाले अपनी तिजोरियां सुरक्षित कर रहे थे। वे लोग एक ओर आपका नाम लेते हैं, और दूसरी ओर मज़दूरों के गले काटते हैं—जैसे खुदा का नाम ले-लेकर बकरे हलाल किए जाते हैं।"

वह मुस्कराया। बोला, "व्यंग्य करने की तो तुम्हारी पुरानी आदत है। बहुत समय हुआ मैंने वर्धा में तुम्हारा वह लेख पढ़ा था—'स्वराज्य के पचास वर्ष बाद'। वह लेख पढ़कर मुझे तुमपर बहुत क्रोध आया था।"

मैंने कहा, "वह लेख मैंने सन् १९४० में लिखा था, जब स्वराज्य की परछाईं भी हमें प्राप्त न हुई थी। परन्तु अभी तो स्वराज्य को मिले तीन वर्ष ही हुए हैं और मेरा लेख—खैर, अब मैं स्वयं अपनी प्रशंसा क्या करूं !"

हम दोनों हंसने लगे। वह बोला, "खैर, अब तुम जल्दी से इस कमरे से बाहर निकलो। मैं तनिक अपना देश देखना चाहता हूं।"

मैंने पूछा "कैसे चलेंगे ? बस की प्रतीक्षा में तो एक लम्बी लाइन में खड़ा होना पड़ेगा।"

वह बोला, "मेरे जीवन-काल में तो लोग मेरी प्रतीक्षा में एक लम्बी लाइन लगाते थे। खैर, अब यूं ही सही।"

कमरे से निकलकर हम लोग सड़क के मोड़ के निकट बस की प्रतीक्षा में खड़े हो गए। हमारे आगे एक सिन्धी औरत थी, जिसके हाथ में मिट्टी के तेल का पीपा था। वह बड़े क्रोध से कह रही थी—

"बस में जब मिट्टी के तेल का पीपा नहीं ले जाने देते तो मैं इसे किस तरह राशन की दुकान तक ले जाऊं ? दुकान यहां से दो मील दूर है। और कैम्प में बिजली भी नहीं। अच्छा राम-राज्य मिला है। हम कराची में क्या बुरे थे ? वहां से हमने घर भी छोड़ा, दुकान भी छोड़ी। यहां कैम्प में बेकार पड़े हैं। अब स्वराज्य मिला है ! बस में पीपा भी नहीं रखने देते। अब सुना है, कैम्प के शरणार्थियों का राशन भी बन्द होने वाला है। अच्छा राम-राज्य मिला है। अब वृक्ष लगा रहे हैं और हमारा राशन बन्द कर रहे हैं। अच्छा राम-राज्य मिला है !"

एक मरहठा क्लर्क बोला, "माई, वृक्ष इसलिए लगाते हैं कि सारा भारत जंगल बन जाए, फिर हर पेड़ पर बन्दर उछलेंगे और भारत में वास्तविक रूप से राम-राज्य स्थापित हो जाएगा।"

"अरे लो, यह बस भी निकल गई। यह पांचवीं बस थी, बिलकुल भरी हुई। एक भी सीट खाली नहीं थी।"

"ऐसा क्यों है ?" उसने मुझसे पूछा।

मैंने कहा, "यहां निकट ही शरणार्थियों का कैम्प है, इसलिए इस इलाके की आबादी बहुत बढ़ गई है, परन्तु बसों की संख्या वही है।"

उसने कहा, तो चलो, पैदल चलें। मैं अपना देश अवश्य देखना चाहता हूं।"

बीस मिनट के बाद हम स्टेशन पर पहुंचे। मैंने पूछा, "आप स्वर्ग से थर्ड क्लास में आए थे या फर्स्ट क्लास में ?"

उसने कहा, "नहीं, मैं तो अपनी स्टेशन वैगन में आया था। परन्तु वह तो मैंने वापस भेज दी। अब थर्ड क्लास ही में चलेंगे।"

मैंने कहा, परन्तु यह शुद्ध थर्ड क्लास है यहां पर। वह थर्ड नहीं जिसमें आप यात्रा किया करते थे—जिसमें बिजली का पंखा भी लगा रहता था, सारी सीटें भी आपकी सुविधा के लिए खाली रखी जाती थीं, और लकड़ी के तख्तों पर गद्दे भी रख दिए जाते थे। अब तो आपको जनता की वास्तविक थर्ड में यात्रा करनी पड़ेगी, जहां न पंखे हैं, न गद्दे, और हर तख्ते पर लोग कंधे से कंधा भिड़ाए पसीनें में तरबतर भिंचे बैठे हैं।"

उसने कहा, "तुम थर्ड का ही टिकट ले लो। मैं अपने देश की जनता में तुम्हारी अपेक्षा अधिक घूमा हूं।"

मैंने कहा, "सोच लीजिए, आजकल कोई भी कांग्रेसी नेता या मिनिस्टर जनता के दर्जे में यात्रा नहीं करता। विनोबा भावेजी भी, सुना है, फर्स्ट में यात्रा करते हैं—और फर्स्ट ही नहीं वरन् 'एयरकंडीशण्ड'। या फिर विशेष चार्टर्ड हवाई जहाज़ में।"

उसने कहा, "अब तुम बोलते ही जाओगे—या फिर मैं किसी और की सहायता लूं?"

मैंने कहा, "अच्छा, अब यह तो बताइए कि टिकट कहां का लूं?"

"दिल्ली का!"

दिल्ली पहुंचकर हम सीधे 'वाइसराय-भवन' की ओर चले, जहां देश के 'राष्ट्रपति' रहते हैं।'

राष्ट्रपति का ए० डी० सी० बड़े तपाक से मिला।

मैंने कहा, "ये मेरे मित्र हैं, हमारे पुराने कृपालु सज्जन। ये राष्ट्रपति से मिलने आए हैं।"

ए० डी० सी० था तो हिन्दुस्तानी, और बात भी हिन्दुस्तानी में कर

रहा था, परन्तु उसका लहजा बिलकुल अंग्रेज़ों का सा था। ऐसा लगता था मानो उसके गले के अन्दर कोई ऐसी मशीन लगी हुई है जो हर अच्छे-भले हिन्दुस्तानी वाक्य को अंग्रेजी सांचे में ढालती चली जा रही है।

"बरा अफसोस हय, रेष्ट्रपति नईं मिल सकते। दरबार हय।"

"हाय, हाय!" मैंने अफसोस से कहा।

"हां, हय, दरबार हय।"

"हाय, हाय, हाय!" मैंने फिर कहा।

ए० डी० सी० का मुंह कानों तक लाल हो गया। बोला, "तो क्या मैं साच नाईं बोलता हऊं। हय, दरबार हय। रेष्ट्रपति बड़े मसरूफ हयं दरबार के अन्दर। नाईं मिल सकते हायं।"

"दरबार में जाने के लिए कोई उपाय है?" मैंने पूछा।

वह बोला, "या तो प्रिन्स होना मांगता, या मेम्बर पार्लियामेंट होना मांगता, या कांग्रेस का बड़ा-बड़ा नेता होना मांगता।"

मैंने अपने साथी से कहा, "फिर तो आप जा सकते हैं—अन्तिम सूची में।"

उसने ए० डी० सी० से आज्ञापूर्ण ढंग से कहा, "तुम राष्ट्रपति को मेरी यह चिट दे दो। वे स्वयं मुझे अन्दर बुला लेंगे।"

ए० डी० सी० चिट लेकर अन्दर गया, और थोड़ी देर के बाद चिट लिए हुए वापस आ गया। बोला—रेष्ट्रपति बोलता—तुमसे किसने मज़ाक किया? ऐसे नाम का आदमी अन्दर कैसे आता? वो तो राजघाट पर हय।"

मैंने अपने साथी से कहा, "क्या खयाल है? राजघाट पर चलेंगे, या यहां पर सत्याग्रह करने का विचार है?"

वह हंसा। फिर तनिक रुककर ए० डी० सी० से बोला, "क्या मैं एक मिनट के लिए अन्दर जा सकता हूं? मेरी बहुत-सी स्मृतियां इस स्थान से सम्बन्धित हैं।"

ए० डी० सी० ने कहा, "सौरी (Sorry), आपकी दावत नाईं। फिर

आप ड्रेस में नाईं।"

"कौन-सी ड्रेस ?"

"अंग्रेज़ी ड्रेस चाहिए, या फिर काला अचकन होना मांगता।"

मेरे साथी ने आवेश में आकर कहा, "मैं बकिंघम पैलेस तक इसी ड्रेस में होकर आया हूं।"

मैंने कहा, "वह तो स्वराज्य से पहले की बात है। अब आप बकिंघम पैलेस तो क्या, किसी साधारण अफसर या राज्य के मंत्री के यहां भी यह लिबास पहनकर नहीं जा सकते।"

'चलो चलें।"

"कहां चलेंगे ?"

"जवाहरलाल नेहरू से मिलेंगे।"

नेहरूजी के यहां गए तो पता लगा कि वे एक पागलखाने का उद्घाटन करने के लिए बम्बई गए हुए हैं। वहां से हम सरदार पटेल के यहां गए तो पता लगा कि वे अखिल भारतीय मारवाडी चेम्बर ऑफ कॉमर्स का उद्-घाटन करने के लिए बीकानेर गए हुए हैं। वहां से श्री के० एम० मुंशी के यहां गए तो पता लगा कि वे भुसावल और मनमाड के बीच में एक खजूर का पेड़ लगाने के लिए चले गए हैं। संयोग की बात, उसी दिन श्री जगजीवनराम को 'कोका-कोला' कम्पनी की ओर से अभिनन्दन-पत्र भेंट किया जाना था, और श्री किदवई कहीं एक नया टेलीफोन एक्सचेंज खोलने गए हुए थे। श्री हरिकृष्ण महताब सत्यनारायण की कथा में बैठे हुए थे और सरदार बलदेवसिंह कश्मीर गए हुए थे। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद कलकत्ता में बीमार थे और श्री राजगोपालाचार्य की अमरीकी राजदूत के यहां दावत थी। सारांश यह कि पूरी की पूरी कैबिनेट गायब थी।

मैंने कहा, "बताइए, अब क्या किया जाए ? किसी डिप्टी-मिनिस्टर से मिलेंगे ?"

"ये डिप्टी-मिनिस्टर क्या होते हैं ?' उन्होंने पूछा।

"यह बड़े मज़े की चीज़ होती है—मिनिस्टर से नीची और डिप्टी-सेक्रेट्री से ऊंची। बीच की एक पैडी।"

उसने नाक पर अपनी ऐनक ठीक करते हुए कहा, "मैंने बीच की पैड़ी को कभी पसन्द नहीं किया।"

मैंने कहा, "यह तो आप नहीं कह सकते। आपकी अहिंसा बीच की पैड़ी थी—अर्थात् अंग्रेज़ों के विरुद्ध अहिंसात्मक संग्राम और बम्बई के मज़दूर पर गोली। हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी बीच की पैड़ी नहीं थी तो क्या थी? खिलाफत और गो-सेवा, मस्जिद-मन्दिर एकता, पूना अवार्ड, इरविन पैक्ट, माउण्ट बेटन-घोषणा।—ऐसा लगता है जैसे नई स्वतन्त्रता का सारा ढांचा इस बीच की पैड़ी की नींव पर तैयार किया गया है। इस बीच की पैड़ी की कृपा से लाखों लोगों के घरबार लुटे, लाखों बच्चे अनाथ हो गए, रिवाल्वर चले, एक-दो-तीन, आपकी छाती के निशान···क्षमा कीजिए···।"

उसने कहा, "तुम्हारा दिमाग शायद पहले से ज़्यादा चल गया है। अच्छा चलो अब यहां से।"

मैंने कहा, "शरणार्थी लोगों का कैम्प देखेंगे? आइए, आपको बम्बई के कोलीबाड़ा कैम्प में ले चलूं, जहां पांच सौ आदमियों के लिए केवल एक शौचालय है। हिटलर के 'कन्सैण्ट्रेशन कैम्पों, में भी इससे अधिक सफाई होती होगी और वहां बम्बई के इस कैम्प के शरणार्थियों ने अपने कष्टों को सरकार के सामने रखने के लिए जब जलूस निकाला तो उनपर गोली चला दी गई। आजकल गोली तो ऐसे चलती है जैसे भादों की वर्षा।"

उसने थोड़ा सोचकर कहा, "चलो चम्पारन चलें, जहां मैंने सबसे पहले किसानों का आन्दोलन शुरू किया था।"

मैंने पूछा, "क्या इस बार भी थर्ड का टिकट कटाऊं? मेरी तो हड्डी-पसली एक हो गई उस थर्ड में। और लकड़ी के तख्ते पर बैठे-बैठे शरीर अकड़कर स्वयं लकड़ी हो गया।"

वह बोला, "ठहरो, स्वर्ग से स्टेशन-वैगन मंगाता हूं। और फिर मुझे

अब भूख भी लग गई है।"

मैंने कहा, "तो अपनी बकरी भी मंगवा लीजिए। यहां दिल्ली में बकरी का दूध कहीं नहीं मिलेगा। आपके भक्त बहुत मिलेंगे, परन्तु उनमें बकरी पालने वाला कोई नहीं मिलेगा।"

"लोग आजकल क्या पालते हैं ?"

"जो अमीर हैं वे 'परमिट' और 'एलॉटमेंट' पालते हैं; जो जूएबाज़ सेठ हैं वे अमरीकनों की दोस्ती पालते हैं और डॉलरों के बूट चाटते हैं; जो घूंसखोर अफसर हैं वे सफेद रंग की 'प्रेयसी' और काले रंग की 'पैकार्ड' पालते हैं; जो मेरे जैसे मूर्ख हैं वे अपना दिमाग चाटते हैं और कष्ट और निर्धनता पालते हैं।"

"अच्छा, छोड़ो इस मामले को। आज मैं तुम्हें बकरी का इतना बढ़िया दूध पिलाऊंगा कि तुम भी सारी आयु याद रखोगे।"

'मैंने सुना है यहां आपकी बकरी को बड़े-बड़े पौष्टिक पदार्थ खिलाए जाते थे और विटामिनों के इन्जेक्शन लगाए जाते थे। भला वह स्वर्ग में क्या खाती होगी ?"

"खाती कुछ नहीं, केवल अमृत पीती है।"

हम दोनों हंसने लगे। इतने में स्वर्ग से स्टेशन-वैगन आ गई और हम दोनों चम्पारन पहुंच गए।

झब्बू ने मुझसे कहा, "एक ऐसा आदमी, जैसा तुम्हारा साथी है, हमारे ज़िले में आया था। बिल्कुल इसी तरह मुस्कराता था। तब मुझे दो बरस की कैद हुई थी। उन दिनों मैं जवान था। तब मुझे जेल जाना अच्छा लगा था।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

"इसलिए कि लगान बहुत अधिक था, ज़मींदार बेगार लेता था,

अंग्रेज़ी सरकार का अमला बहुत तंग करता था, अत्याचार करता था। और जैसा तुम्हारा साथी है, उसी आकृति के उस आदमी पर हमने—मैंने और मेरे गांव के लोगों ने—भरोसा किया था, और उसके कहने पर जेल काटी थी, चक्की पीसी थी, घर लुटवाया था, खेत ज़ब्त करवाया था···।''

"अब क्या हाल है ?'' मेरे साथी ने झब्बू से पूछा, "अब तो आनन्द ही आनन्द आ रहा होगा, अब तो अपना ही राज्य है।''

"सो भई वह तो ठीक है,'' झब्बू ने ठंडी सांस भरकर कहा, "अपना राज तो है पर अपनी धरती नहीं है। धरती तो वही ज़मींदार की है और उसका अत्याचार उसी तरह का है। उसके ऊपर बड़ी सरकार है, वह भी वैसी ही है जैसे आज़ादी से पहले थी। केवल टोपी बदली है, और कुछ नहीं बदला। पहले अंग्रेज़ी टोपी थी, अब गांधी टोपी है। और पिछले महीने से अकाल पड़ गया है। पर सुना है दिल्ली का वज़ीर नहीं मानता। कहता है—बिहार में अकाल कैसा ? अभी कल ही हमारे गांव का कुम्हार मर गया—भूख से। मगर हमारा वज़ीर काहे को मानेगा ? सब मर जाएंगे तो भी अकाल नहीं पड़ेगा। ऊपर से तहसीलदार कहता है, वृक्ष उगाओ। अरे भाई, इस धरती में तो अब तनिक से चावल नहीं होते, पेड़ कैसे, कहां उगाएं ?''

"तुम सत्याग्रह क्यों नहीं करते ?'' उसने पूछा।

झब्बू ने धीरे से इधर-उधर देखा। फिर भेद-भरे ढंग से, डरा हुआ सा बोला, "धीरे से ऐसी बात करो। कहीं किसी ने सुन लिया तो गोली चल जाएगी भाई ! चार दिन ज़िन्दगानी के और हैं, जैसे-तैसे काट लेवेंगे। मगर राम भला करे उस लंगोटी वाले का ! यार ने कैसा चकमा दिया। उसके चेले-चांटे तो मज़े कर रहे हैं, यहां झब्बू उसी तरह पिस रहा है जैसे पहले पिसता था। अच्छा राम-राज्य आया···इससे तो रावण-राज्य ही अच्छा था···।'' उसकी आंखों में आंसू छलक उठे।

मैंने कहा, "झब्बू से और कुछ पूछना हो तो रुक जाएं, नहीं तो कहीं

और चलें।"

उसका गला भर आया। बोला, "नहीं, और कुछ नहीं पूछना। अब यहां से चलो।"

मैंने पूछा, "तो अब कहां चलें? सालेम जेल में, जहां इक्कीस कम्युनिस्ट कैदी गोली से मार दिए गए थे?"

"नहीं।"

मैंने पूछा, "अच्छा, तो त्रिवेन्द्रम का वह ज़िबहघर आप देखेंगे जहां बकरियां काटी जाती हैं, जिसका ठेका एक कांग्रेसी नें ले रखा है?"

"नहीं, नहीं!"

"अच्छा तो आचार्य कृपलानी से ही मिल लीजिए। वे आपको बताएंगे कि कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल किस तरह बनते हैं और किस तरह बदले जाते हैं। किस तरह और क्यों किसी को वज़ीर बनाया जाता है और किसी को हटाया जाता है।"

"नहीं, नहीं!"

"अच्छा तो फिर कश्मीर चलिए, जहां भारत और पाकिस्तान की सेनाएं एक-दूसरे के आमनें-सामनें सत्याग्रह कर रही हैं।"

"नहीं भाई, मैं अपनें देश की सच्ची अवस्था देखना चाहता हूं।"

यह तो आपको सरकार द्वारा नियत किए गए कण्ट्रोल के भावों की सूची देखने से पता चल जाएगा। जब आप मरे थे, उस समय से आज के भाव लगभग तीन गुना बढ़े हुए हैं। पहले चीनी नहीं मिलती थी, अब गुड़ भी चोर-बाज़ार में पहुंच गया है, और खद्दर भी। अन्तर केवल इतना है कि गुड़ चोर-बाज़ार के अन्दर होता है और खद्दर चोर-बाज़ार के ऊपर मंढा हुआ होता है। जनता के हाथ में तो केवल चर्खा ही चर्खा है।"

"मुझे तो तुम्हारी बातों पर न पहले कभी विश्वास था, न अब है।" उसने मुस्कराते हुए कहा, "मैं तो स्वयं पूछताछ करूंगा। चलो बम्बई चलें। वहां बहुत-सी बातों का पता चल जाएगा। सबसे पहले मैं वहां पहुंचकर कपड़े का भाव जानना चाहता हूं।"

"कपड़े की भी दो किस्में हैं, "एक अमीर आदमी के कपड़े का भाव है, जो सरकार नें अलग तय किया हुआ है, और दूसरा गरीब आदमी के कपड़े का भाव है, जो पिछले दो वरस से वही चला आ रहा है।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् वही लंगोटी ! भाव कुछ भी क्यों न हो और चाहे राम-राज्य हो चाहे रावण-राज्य, बस वही एक लंगोटी है गरीब के लिए।"

"पहले तुम इतने झक्की नहीं थे। अब क्या बात हो गई है ?" उसने मुझसे पूछा।

"पहले भाव इतने बढ़े हुए नहीं थे। पहले मैं कोमल पतली अंगुलियों और गुलाब की पोरों के स्वप्न-जगत् में भ्रमण किया करता था। फिर भाव दुगने हो गए, फिर तिगुने, फिर चौगुने। तब सहसा महंदी वाली अंगुलियां मिट्टी में सन गईं और गुलाब की पोरें मुरझाकर धूल में मिल गईं और जिससे मैं प्रेम करता था, वह मेरी बेकारी से तंग आकर एक सट्टेबाज़ के पास चली गई।"

"बकरी का दूध पियोगें ?" उसने पूछा।

"आपकी स्वर्ग वाली बकरी का दूध मैं नहीं पीऊंगा। और फिर अमृत पीनें वाली बकरी का दूध पीकर मैं सदा जीवित रहना नहीं चाहता।"

"क्यों ?"

"सदा जीवित रहना आने वाले बच्चों के लिए बुरा है। यही अधिक अच्छा और उचित है कि हम लोग थोड़ी देर के लिए जीवित रहें और फिर मर जाएं और संसार सदा के लिए हमें भूल जाए।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् जैसे पुरानें फूल थोड़ी देर खिलकर, महककर, लहककर, मुरझा जाते हैं और उनकी जगह नये फूल आ जाते हैं।"

इतने में स्टेशन-वैगन आ गई और हम दोनों बम्बई के भिंडी बाज़ार में पहुंच गए।

× × ×

कमाल ने कहा, "मैंने आपको पहचान लिया है।"

उसने पूछा, "कैसे ?"

कमाल ने कहा, "आप अहमदाबाद में आकर सारा भाई के यहां ठहरा करते थे, और मैं सारा भाई की मिल में काम करता था।"

"आजकल कहां हो ?"

"यहां सैसून मिल में काम करता हूं।"

"अंग्रेज़ों की मिल क्या यहां अभी तक है ?"

"अंग्रेज़ों की कौन-सी चीज़ यहां से गई ? अंग्रेज़ी तक यहां मौजूद है।"

"कपड़े का क्या भाव है ?"

"मुझे तो पता नहीं। दो साल से मैंने कोई कपड़ा नहीं खरीदा।"

"क्यों ?"

"रोटी, खोली, बीमारी, बिजली, पानी और बीड़ी के बाद पैसे ही नहीं बचते।"

"तुम्हारी पत्नी कहां है ?"

"पाकिस्तान में।"

"क्यों ?"

"जब दंगा हुआ था तो अम्मां के साथ चली गई थी। मैं भी चला जाता, मगर आपने मेरी जान बचा ली।"

"अब तुम पत्नी को वापस क्यों नहीं बुला लेते ?"

"कैसे बुला लूं ? खर्च नहीं है। मज़दूर हड़ताल पर हैं।"

"हड़ताल क्यों कर रहे हैं ?"

"बोनस नहीं मिला।"

"बोनस ? काहे का ?"

"मिल-मालिकों ने करोड़ों रुपया कमाया है। आपको याद होगा, एक बार आपने कण्ट्रोल उठवा दिया था। बस, कुछ ही दिनों में मालिकों ने करोड़ों रुपयों का हेर-फेर कर लिया।"

"हां, वह मेरी भूल थी।"

"भूल आपकी थी, मज़ा हमें आ रहा है। चीज़ों के दाम बढ़ते जा रहे हैं—ज्यों-ज्यों स्वराज्य की आयु बढ़ती जा रही थी।"

"तुम आखिर क्या चाहते हो ?—बोनस ?"

कमाल ने कहा, "नहीं। मैं तो अपना राज्य चाहता हूं। मैं सारे कार-खाने स्वयं चलाऊंगा, सारे खेत स्वयं बोऊंगा, सारी मेहनत स्वयं करूंगा और सारा फल भी स्वयं ही खाऊंगा।"

"फिर तो गोली चलेगी।" उसने हंसकर कहा।

कमाल बोला, "मुझे मालूम है। मगर क्या आप हमें एक लंगोटी में देखकर प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं ? यदि ऐसा है तो आपने हमारी जान क्यों बचाई थी—क्या कुढ़-कुढ़कर मरने के लिए ?"

उसने कहा, "मैंने स्वयं आयु-पर्यन्त लंगोटी पहनी।"

कमाल ने कहा, "वह तो मसीह थी, सलीब थी, सलीब किसी राष्ट्र को एक बार प्राप्त होती है, और उससे समूचा राष्ट्र जीवित हो उठता है। परन्तु अफसोस, हमारे देश का जीवन यह सलीब मिलने के बाद भी नहीं बदला। इस तन पर लंगोटी की लंगोटी ही रही···।"

"संतोष करना सीखो, कमाल !"

कमाल ने मुस्कराकर कहा, "अच्छा चलिए, केवल बोनस ही दिलवा दीजिए। लाइए हाथ।"

वह हंसने लगा। फिर उसने कमाल से पूछा, "क्या तुम्हारी हड़ताल से मिल-मालिकों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ?"

"गोली दो बार चल चुकी है। आगे शायद और चलेगी। घर के बर-तन तक बिक गए हैं। अहमदाबाद के मिल-मालिक बहुत खुश हैं क्योंकि बम्बई की मिलें बन्द हैं और उनकी मिलें चल रही हैं—अर्थात् हमारे लिए जो मरण है, धनवान् के लिए वही जीवन है।"

"मेरे स्वराज्य में शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं।"

"तो फिर वह चिड़ियाघर या सरकस का घाट होगा, जंगल का घाट

नहीं हो सकता।''

"मेरे स्वराज्य में अमीर और गरीब दोनों बराबर हैं।''

"यह स्वराज्य तो पूंजीपतियों का स्वराज्य है? यह गरीबों का स्वराज्य नहीं हो सकता।''

"तुम दूसरों का अधिकार छीनना चाहते हो।''

"यदि दूसरे व्यक्ति के अधिकार में पूरा मिल है और मुझे अधिकार में केवल एक खोली-भर प्राप्त है, यदि दूसरे के अधिकार में यूरोप की सैर है और मेरे अधिकार में चाय पीने के लिए भी पैसे नहीं हैं, यदि दूसरे के बच्चों के लिए विदेशों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है और मेरे बच्चों को चार अक्षर पढ़ने का भी अधिकार प्राप्त नहीं है, तो मैं दूसरों के अधिकार अवश्य छीनूंगा।''

"ऐसा लगता है कि तुम बहुत भूखे हो कमाल!''

"हां, मैंने दो दिन से कुछ नहीं खाया है। मैं डेढ़ महीने से हड़ताल पर हूं।'' कमाल ने अत्यन्त कटु और तीखी मुस्कान के साथ कहा।

"लो आओ, तुम्हें बकरी का दूध पिलाएं।''

कमाल हंसा। बोला, "भूख बड़ी तीव्र लगी हुई है। बकरी के दूध से क्या होगा? वह सामने नूर कबाबिये की दुकान है, चलकर वहां से कुछ ले दीजिए ना?''

इतने में स्टेशन-वैगन आ गई और हम दोनों कुड़प्पा चले गए।

कुड़प्पा में 'शान्ति का जुलूस' निकल रहा था। गांवों के लोग, स्कूल-कालिजों के विद्यार्थी, गरीब क्लर्क, छोटे-छोटे गरीब दुकानदार, बेकार नवयुवक, और दो-तीन गरीब पत्रकार—सब हाथों में झंडे लिए जुलूस के रूप में जा रहे थे और नारे लगा रहे थे—

"हम अमन चाहते हैं!''

"संसार में शान्ति का राज्य हो।''

"तीसरा महायुद्ध बन्द हो।''

जो पहले परमाणु बम्ब गिराएगा, वह जनता का शत्रु होगा।''

हम भी इस जुलूस में सम्मिलित हो गए। उसने मुस्कराकर समीप के एक व्यक्ति से पूछा—

"तुम्हें शान्ति क्यों चाहिए ?"

"इसलिए कि मैं बच्चों को पढ़ाता हूं।"

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"सुब्बाराव।"

"क्या वेतन पाते हो ?"

"बाईस रुपये।"

"बाईस रुपयों में कैसे काम चलता होगा ?"

"भूखा रहना पड़ता है।"

"और फिर भी शान्ति चाहते हो ?"

सुब्बाराव ने रुककर कहा, "शान्ति !···मैं आपका प्रश्न समझ गया। हां, मुझे शान्ति फिर भी चाहिए। एक तो मेरे स्कूल के बच्चे हैं। मुझे उन्हें पढ़ाते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है। फिर मेरे बूढ़ी मां है। वह शायद आठ-दस बरस और जिए। उसने कितनी मेहनत से मुझे पढ़ाया है ? मुझे चाहे कितनी भी मेहनत क्यों न करनी पड़े; यदि मैं उसे थोड़ा-सा भी आराम न दे सकूं तो मेरे जीवन को धिक्कार है। इसलिए मुझे शान्ति चाहिए···और मां किसको प्यारी नहीं होती···फिर एक बात यह भी है कि शायद मैं कभी किसी लड़की से प्रेम भी करूंगा······अब तुम समझ गए कि मुझे शान्ति क्यों चाहिए ?"

मेरा साथी आगे बढ़ गया और एक किसान से, जो आगे-आगे नारा लगा रहा था, पूछा, "तुझे लगान, ज़मींदारा और ब्याज देकर क्या बचता है ?"

"एक जून भोजन। और यदि फसल अच्छी न हो तो वह भी नहीं बचता।"

"फिर भी तुझे शान्ति चाहिए ?"

"हां," किसान ने रुक-रुककर कहा, "कभी तो धरती पर भी वसन्त ऋतु आएगी। मैं उस समय के लिए जीवित रहना चाहता हूं।"

"ये लोग कितने अच्छे हैं !"

मेरे साथी का चेहरा खिल उठा। मैं आखिर तक उनके साथ जुलूस में सम्मिलित रहूंगा। मैं इनकी सभा में भाषण भी दूंगा—यदि ये लोग मुझे इस बात की इजाज़त देंगे तो।"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं," मैंने विश्वास के साथ कहा, "ये भारत के नये लोग हैं।"

उसी विश्वास के साथ मैंने जलसे में उसका परिचय 'एक पुराने कांग्रेसी' के रूप में कराया। हां, मैंने उसका नाम नहीं बताया—नाम बताना उचित नहीं समझा।

उसने अपने भाषण में कहा, "भारत में शान्ति का आन्दोलन बहुत पुराना है। यहां युद्धप्रिय और रक्त-पिपासु लोग भी आते रहे, परन्तु शान्तिप्रिय लोग शान्तिप्रिय जनता के सहारे उनका सामना करते रहे। शान्ति की शक्ति और उसकी विजय हमारे इतिहास के हर पन्ने पर दृष्टिगोचर होती है। गौतम बुद्ध, अशोक, अकबर, नानक, कबीर, चिश्ती······शान्ति तो भारत की आतमा है, उसका शाश्वत धर्म है, उसकी वास्तविक सभ्यता इसी मसाले से बनी है। इसके लिए अच्छे लोगों ने सदा अपने प्राणों का बलिदान दिया है। वे खाली उपदेश ही नहीं देतें रहे, इसके लिए अपने जीवन की आहुति भी देते रहे हैं। आज भी जब संसार को शांति की आवश्यकता है, भारत के लोग एकमत होकर शान्ति के आन्दोलन में संसार के शान्तिप्रिय लोगों का साथ देंगे। और इस कार्य के लिए मैं अपना जीवन पेश करता हूं, क्योंकि मैं समझता हूं कि···"

इससे आगे वह कुछ न कह सका, क्योंकि पुलिस ने जुलूस को अवैध घोषित कर दिया और लाठी चला दी। जब लाठियां खाकर भी लोग तितर-बितर न हुए तो गोलियां चलाई गईं। उसके फिर गोली लगी—एक नहीं, दो नहीं, तीन गोलियां उसकी छाती में लगीं, और वह 'हाय राम !' कहता हुआ प्लेटफार्म से नीचे गिर पड़ा और गिरते ही ठंडा हो गया···।

थाने में पूछताछ के लिए मुझे बुलाया गया। पुलिस-इंस्पेक्टर ने मुझसे पूछा, "इस आदमी को पहचानते हो ?"

मैंने कहा, "अच्छी तरह पहचानता हूं। इसका नाम मोहनदास करम-चन्द गांधी है। यह हमारे देश का सरदार था। आज दूसरी बार इसकी हत्या की गई है।"

पांच

मुझे किसीसे घृणा नहीं है

बहुत दिनों से मलिक साहब से मुलाकात नहीं हुई थी। आखिरी बार, तीन महीने हुए, जब वे मुझसे मिले थे, तो उस समय वे एक फिलम बनाने के चक्कर में थे। उसके बाद उनसे मुलाकात नहीं हुई। आज सवेरे-सवेरे नाश्ते पर मुझे सहसा उनका ख्याल आया तो मैंने सोचा, चलो दादर में चलकर उन्हें देखता जाऊं, और यह भी पूछता जाऊं कि उनका चक्कर किस स्तर पर है।

दादर में मलिक साहब के घर पहुंचा तो वे घर पर नहीं थे। भाभी ने बताया कि वे दफ्तर गए हुए हैं।

"दफ्तर कहां लिया है ?"

"ओपेरा हाउस के निकट। दाईं ओर की गली में जो लालजी भाई मूलजी भाई धोखेवाला की बड़ी-सी बिल्डिंग है ना, उसके बड़े फाटक के अन्दर पहली मंजिल पर।"

मैंने दिल में सोचा कि चलो, बहुत अच्छा हुआ। आखिर मलिक साहब ने अपनी फिल्म कम्पनी बना ही डाली। तो मैं उनके दफ्तर जाकर उन्हें बधाई क्यों न दे आऊं ? यह सोचकर मैं कुर्सी से उठा और कमरे से बाहर निकला तो भाभी ने कहा, "चाय पीकर जाइए ना।"

मैंने पूछा, "घर में चीनी है ना ?"

"चीनी ?" भाभी ने सकपकाकर कहा, "चीनी तो नहीं है। आपको मालूम ही है, वह राशन से मिलती है और कितनी कम मिलती है। अगर आपको चाय यहां पीनी थी तो कम से कम चीनी तो घर से ले आते।"

"भविष्य में सावधानी बरतूंगा।" यह कहकर मैं कमरे से बाहर निकल गया। भाभी द्वार पर खड़ी थी। चलते-चलते मुझे ठोकर लग गई। भाभी घबराकर बोली, "ऐ है ! आप भी क्या गज़ब करते हैं। सावधानी से उतरिए ना, यह ज़ीना बहुत कमजोर है। कहीं टूट गया तो मालिक-मकान कभी दोबारा बनवाकर नहीं देगा।"

मैं चुपचाप अपना घुटना सहलाता हुआ नीचे उतर गया। जब मैं लालजी भाई मूलजी भाई धोखेवाला की बिल्डिंग में पहुंचा तो पता लगा कि वहां किसी फिल्म-कम्पनी का दफ्तर नहीं है। पहली मंजिल पर बाहर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ एक बोर्ड लगा हुआ था—

तेलधारा

एक सुगन्धित तेल जो सब रोगों का शर्तिया इलाज है।

आविष्कारक—डॉ० मलिक

मैं बोर्ड पढ़कर जल्दी आफ़िस में चढ़ गया। आफिस में एक बड़ी-सी मेज़ पर सर लटकाए मलिक साहब, अर्थात् डॉक्टर मलिक, ऊंघ रहे थे। मैंने जाते ही एक शेर लय से पढ़ा। मलिक साहब हड़बड़ाकर उठ बैठे और बड़े प्रेम से मुझे छाती से लगाकर कहने लगे—

"मैं लखपति होने वाला हूं। मुझे बधाई दो।"

"वह कैसे ?" मैंने पूछा।

मलिक साहब मेरी ओर देखकर मुस्कराए। वास्तव में मलिक साहब का स्वभाव अत्यन्त नम्र और शीलयुक्त है। वे कभी हाथ हिला-हिलाकर, अंगुलियां नचा-नचाकर, जबड़ा हिला-हिलाकर बात नहीं करते, वरन् नीची निगाहें किए, गरदन झुकाए, कंधे सिकोड़े बड़ी नरमी से और दब-दबकर इस तरह बात करते हैं जैसे अपनी पत्नी के सामने बोल रहे हों। वास्तव में किसी पति के स्वभाव के निर्माण में उसकी पत्नी के स्वभाव का बहुत

बड़ा हाथ होता है। और यदि ऐसा न हो तो पति के लिए आपत्ति ही आपत्ति है।

इसलिए जब मलिक ने रहस्यपूर्ण लहजे में कहा, 'मैं लखपति होने वाला हूं'—तो उनकी आवाज़ में ऐसा कम्पन था मानो वे किसी अपराध के लिए अपनी पत्नी से क्षमा मांग रहे हों। मैंने कहा, "भई, आखिर बताओ तो यह मामला क्या है? तुम तो एक फिल्म कम्पनी खोल रहे थे, यह तेल-धारा क्या खोल बैठे ?"

मलिक साहब कहने लगे, "ये अलमारी में जो शीशियां देख रहे हो, ये तेलधारा की शीशियां हैं। इस तेल का आविष्कार मैंने किया है। यह सुगंधित तेल इस युग का सबसे बड़ा आविष्कार है।"

फिर ज़रा खांसकर बोले, "इसे माथे पर लगा लो तो सिर का दर्द उड़ंछू हो जाता है; नाक के नथनों में डाल लो तो जुकाम दूर हो जाता है; कान में डालो तो कान की मैल साफ हो जाती है। यह तेल एकदम बाल-सफा पाउडर भी है और बाल उगाने का तेल भी।"

"वह कैसे ?" मैंने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

वे बोले, "इस तेल को दिन में लगाओ तो बाल साफ कर देता है, और रात को लगाओ तो बाल उगा देता है। इसके अतिरिक्त यह तेल सफ़ेद बालों को काला करता है और काले आदमियों को गोरा बना देता है। आप इसे लगा तो सकते ही हैं, और आवश्यकता पड़ने पर पी भी सकते हैं, क्योंकि इसमें अरंडी का तेल भी सम्मिलित है जो कब्ज़ को दूर करता है और अंतड़ियों को साफ करता है। सारांश यह कि यह तेल प्रत्येक रोग का इलाज है, सर्वोत्तम खिजाब है और सुगंधित जुलाब है।"

इतना कुछ कह चुकने के बाद मलिक साहब फिर मुझसे लिपट गए। मैंने बड़े प्रेम से उनके कंधे पर हाथ रखा और कहा, "अब तक कितनी लाख बोतलें इस तेल की बिक गई हैं ?"

"अभी तक तो केवल तीन बोतलें बिकी हैं। पर वास्तव में पब्लि-सिटी···और तुम जानते हो, आज के युग में विज्ञापन···"

मलिक साहब आगे कुछ कहना चाहते थे परन्तु कह न पाए, क्योंकि महमूद आ गया। महमूद हम दोनों का मित्र है, और अत्यन्त भावुक व्यक्ति है। वह हुसैन सेठ मिरचेवाला की दुकान पर कपड़ा बेचता है और अवकाश के समय फिल्मी कहानियां लिखता है। परन्तु उसकी कोई कहानी अब तक नहीं बिक सकी है। इससे आप उसके भावुक होने का अच्छी तरह अनुमान लगा सकते हो। आज वह और दिनों की अपेक्षा बहुत खुश दिखाई दे रहा है।

मैंने पूछा, "महमूद प्यारे, क्या बात है? आज बहुत खुश दिखाई दे रहे हो। नौकरी से जवाब मिल गया है क्या?"

वह बोला, "नहीं भाई, नौकरी से जवाब तो नहीं मिला। बात यह है कि एक ऐसी तरकीब मेरे दिमाग में आई है कि हम तीनों लखपति बन सकते हैं।"

मलिक साहब ने पूछा, "कितने दिनों में? वास्तव में महमूद भाई, यह प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि आदमी कितने दिनों में लखपति बन सकता है। उदाहरण के रूप में तुम इस तेलधारा को ही ले लो। पिछले तीन महीनों में मैंने इसकी तीन बोतलें बेची हैं। इस रफ्तार से मुझे विश्वास है कि यदि मैं दो सौ बरस तक और जीवित रहूं तो अवश्य लखपति बन सकता हूं।"

"बेशक, बेशक!" महमूद ने सर हिलाकर कहा, "परन्तु इसके लिए यह भी आवश्यक है कि हों हर बरस के दिन पचास हज़ार!"

"बिलकुल, बिलकुल! मलिक साहब ने महमूद की बात का समर्थन करते हुए कंधे सिकोड़कर और अपनी नाक ऊंची करके, महमूद की ओर देखते हुए फिर पूछा, "कितने दिन? कितने दिन लगेंगे लखपति बनने में?

"कोई एक साल का समय चाहिए।

"तो एक साल तक क्या करेंगे? यही तेलधारा बेचेंगे?

"बेशक, बेशक! महमूद बेध्यानी में कह गया। फिर चौकन्ना

होकर बोला, "ऐसा नहीं है मलिक साहब। मेरी तरकीब से पहले सैकड़ों की आमदनी होगी, फिर हज़ारों की। और एक साल के बाद लाखों की आमदनी होने लगेगी।"

"तो जल्दी से बताओ ना!" मलिक साहब ने तनिक चिढ़कर और अधीर होकर कहा।

"बताता हूं। सुनो, बात यह है मलिक साहब—आप साहित्य में रुचि रखते हैं। यह बात अलग है कि आप प्रतिकूल परिस्थिति के कारण तेलधारा बेचने के लिए विवश हो रहे हैं, और मैं कपड़ा बेचने के लिए। परन्तु हम दोनों साहित्यिक रुचि रखनेवाले व्यक्ति हैं, और यह हमारा मित्र (मेरी ओर संकेत करके) तो कवि है ही। क्यों भई, कल के कवि-सम्मेलन से तुम्हें क्या मिला?"

"आने-जाने का थर्ड क्लास का किराया और दस रुपये नगद। सोडा-लैमन, सिग्रेट आदि।"

"अच्छे रहे," मलिक साहब ने खुश होकर मेरी ओर देखते हुए कहा।

"बेशक, बेशक!" महमूद की निगाहों ने जैसे अपना हाथ मेरी जेब में डाल दिया।

मलिक साहब ने कहा, "तो वह तरकीब बताओ ना जल्दी से।"

महमूद कुछ कहने को था कि तेलधारा के ऑफिस में गिरधारी दाखिल हुआ। गिरधारी हम तीनों का चौथा मित्र है। परन्तु इस समय वह एक दुश्मन की भांति बिफरा हुआ दिखाई दे रहा था। उसकी कमीज़ मैली थी, गरदन की रगें फूली हुई थीं, माथे पर उलझी-सुलझी त्यौरियां पड़ी हुई थीं और धूल में पांव अटे हुए थे। खैर, हमने उसके क्रोध के बावजूद उसे अपनी नई तरकीब में सम्मिलित कर लिया। महमूद की तरकीब बहुत आसान थी—जैसी लखपति बनने की हर तरकीब होती है। "हम सब लोग एक-एक फिल्मी कहानी लिखेंगे और फिर मिलकर बेचेंगे और पैसे आपस में बांट लेंगे। हम एक प्रकार का 'कहानी-सिंडीकेट' बना लेंगे, जहां से फिल्म-निर्माताओं को हर तरह की, हर ढंग की, हर प्रकार के प्लॉट की

कहानियां मिल सकेंगी—कहानी जिसमें हीरो हीरोइन को भगा ले जाता है, और वह कहानी जिसमें विलेन (खलनायक) दोनों को भगा ले जाता है। हर प्रकार का फारमूला प्रयुक्त किया जाएगा। बिलकुल तेल-धारा का-सा फारमूला है।''

''बेशक, बेशक !'' महमूद ने सिर हिलाकर कहा।

गिरधारी ने ज़ोर से मेज़ पर मुक्का मारकर कहा, ''यह स्कीम चल सकती है। हम इससे लाखों रुपये कमा सकते हैं। हमारे पास क्या नहीं है ? बुद्धि है, सूझ-बूझ है, सभ्यता-शिष्टाचार है, कला है, सोचने की शक्ति है और तेलधारा है !''

''बेशक, बेशक !''

गिरधारी ने मेज़ पर दूसरा मुक्का मारकर कहा, ''महमूद ! तुम हर समय 'बेशक, बेशक' न कहा करो। मुझे बड़ा क्रोध आता है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि हम लोग संगठित हो जाएं और मिलकर दुनिया में कार्य करें। दुनिया में जब तक हम अपना गुट नहीं बनाएंगे, हमें कोई नहीं मानेगा। अब्बास को देखो—अपना गुट बनाकर काम करने लगा, आज लाखों में खेल रहा है। क्यों ? केवल इसलिए कि उसका अपना एक गुट था। क्या तुम अब्बास से कम योग्य हो, महमूद ? तुम मलिक ? और मैं गिरधारी ? और तुम महाकवि 'अज्ञात' ? तुम कितने बड़े महाकवि हो ! परन्तु तुम्हें पूछता कौन है ? अरे भाई ! दुनिया में गुट बनाकर काम करो। यह साला अब्बास ! मैं उसे ठीक कर दूंगा। मैं उसे बता दूंगा। मैं तुमको, महमूद ! तुमको उसके विरुद्ध ग्रुप का लीडर बनाऊंगा। दुनिया देखेगी और अब्बास याद करेगा कि कोई उसके सामने छाती तानकर खड़ा हुआ था। मैं उसे नीचा दिखाऊंगा। वह मेरे पांव पड़ेगा, गिड़गिड़ाएगा, रोएगा; लेकिन मैं उसे क्षमा नहीं करूंगा। साला क्या समझता है अपने-आपको ? मैं उसे इतना रगेदूंगा, इतना अपमानित करूंगा···''

महमूद ने पूछा, ''क्या बात है गिरधारी ? अब्बास ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?''

"तुम नहीं जानते," गिरधारी ने क्रोध के साथ कहा, "अब्बास का नाम न लो मेरे सामने···।"

मैंने कहा, "पर हम कहां ले रहे हैं ? तुम स्वयं ही तो उसका ज़िक्र कर रहे हो, और मैं सुन रहा हूं—यद्यपि वह मेरा मित्र है।"

मलिक साहब ने बात का पहलू बदलकर महमूद की योजना के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना प्रारम्भ किया और उसमें कई बातें निकालीं। यह तय किया गया कि कहानियां बेचने के साथ-साथ तेलधारा का बेचना भी जारी रखा जाए। इसके अतिरिक्त महमूद अभी मुहम्मद वहाबी हुसैन सेठ मिरघेवाला के यहां कपड़ा बेचने का काम जारी रखे। गिरधारी जो छः महीने से बेकार था, बराबर नौकरी की तलाश जारी रखे और दफ्तरों का चक्कर लगाता रहे। तथा इस बीच में यदि मुझे कहीं से किसी कवि-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण आए तो मैं अपने साथ अपने तीनों मित्रों को भी उसमें सम्मिलित कराने का प्रयत्न करूं। कविताएं सबके लिए स्वयं लिखूं। सारांश यह कि एक लम्बी-चौड़ी योजना तैयार हो गई। इस बातचीत में ढाई बज गए। मैं चाहता था कि महमूद चला जाए और गिरधारी भी खिसक जाए तो मैं मलिक साहब को किसी होटल में खाने के लिए निमंत्रित करूं, क्योंकि मेरी जेब बहुत भारी न थी। परन्तु ऐसा न हुआ। बात में से बात निकलती रही, बातचीत चलती रही, गिरधारी के होंठों पर पपड़ियां सूखती रहीं, महमूद एक चाबी वाले खिलौने की भांति गरदन हिला-हिलाकर 'बेशक-बेशक' कहता रहा, और मलिक साहब के कन्धे सिकुड़ते रहे।

जब साढ़े तीन बजने को आए तो मैंने मलिक साहब से कहा, "ओह ! बातों-बातों में खाना तो भूल ही गए। चलिए, किसी होटल में चलकर खाना तो खा लें।"

महमूद और गिरधारी भी उठ खड़े हुए। मलिक साहब ने कहा, "भाई, क्षमा करना। मैं बहुत लज्जित हूं। मुझे भूख बिलकुल नहीं है।"

"चलिए ना मलिक साहब !" महमूद बोला, "वैसे तो भूख मुझे भी

नहीं है, परन्तु जब 'अज्ञातजी' कह रहे हैं तो इन्कार भी कैसे किया जा सकता है?"

गिरधारी ने कहा, "मैं तो खाकर आया हूं।"

"थोड़ा-सा चख लेना; दो-चार कौर ही सही···।"

"नहीं, नहीं," गिरधारी ने बड़े क्रोध से कहा, "मैं कह जो रहा हूं कि मैं खाकर आया हूं।"

मैंने उसकी बांह में बांह डाल दी और उसे अपने साथ घसीट ले गया।

पहले मेरा विचार किसी मध्यम श्रेणी के होटल में जाने का था, परन्तु साथ में केवल मलिक साहब को ले जाने का विचार था। तब हम दो व्यक्ति होते, अब चार थे। इसलिए मैंने अपना विचार बदल दिया और एक सस्ते से होटल में घुस गया। यह भैयाजी का होटल था। यहां खाने के लिए केवल पूरी और भाजी मिलती है—तेल की पूरी और आलू की भाजी, तथा नल का पानी। साधारणयता सब मिलाकर छः आने में एक आदमी का खाना हो जाता है। परन्तु आज चूंकि मलिक साहब को भूख नहीं थी, इसलिए उन्होंने २० पूरियां खाईं, महमूद ने १२, मैंने १५, और गिरधारी तो घर से खाना खाकर आया था, इसलिए उसने केवल २५ पूरियां खाईं। इसके अतिरिक्त उसके लिए दही-बड़े की एक बड़ी प्लेट का भी ऑर्डर दिया गया। जब भोजन समाप्त हुआ तो कवि-सम्मेलन से मिले रुपये में से जो रक़म मेरे पास बची हुई थी वह भी समाप्त हो गई। मेरी जेब में केवल पांच आने के पैसे रह गए। जब होटल से निकले तो महमूद को एक आवश्यक काम याद आ गया और मलिक साहब को तेलधारा की एक शीशी बेचने के लिए कहीं जाना था। खैर, वे दोनों चले गए और हम दोनों लखपतियों को अकेला छोड़ गए।

गिरधारी ने मुझसे कहा, "जानते हो, आज मैंने तीन दिन के बाद खाना खाया है?"

मैंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, धीरे से कहा, "कॉफी पीओगे?"

गिरधारी ने कहा, "क्यों नहीं?"

"तो चलो सामने की दुकान पर।"

दुकान के अन्दर पहुंचकर गिरधारी ने अपने धूल में अटे हुए पांव धोए। अपनी चप्पलें साफ कीं जिनके तले में एक बड़ा-सा सूराख था, और अपना मुंह धोया। फिर उसने अपने बालों में कंघी की और मेरे साथ एक केबिन में आ बैठा। बॉय ने गरम-गरम कॉफी के दो कप हमारे सामने लाकर रखे।

गिरधारी ने कप उठाया। कॉफी की सौंधी-सौंधी महक उठती रही और प्याली से उठती हुई धुएं की लकीर बल खाती हुई वातावरण में गुम होती रही। गिरधारी का चेहरा साफ होता गया, माथे की हर त्यौरी दूर होती गई. गरदन की तनी हुई रगें ढीली पड़ती गईं, होंठों की पपड़ियां मुलायम पड़ती गईं और उसकी आंखों की पुतलियां किसी सुन्दर, मीठे स्वप्न में खो गईं।

मैंने कहा, "अच्छा अब बताओ, तुम्हें अब्बास से क्यों घृणा है?"

"घृणा?" गिरधारी ने धीरे से बड़े नरम और मुलायम लहजे में कहा, "मुझे अब्बास से कोई घृणा नहीं है। मुझे किसी से घृणा नहीं है। आज मैं भूखा नहीं हूं।"

गिरधारी के चेहरे को देखकर मुझे ऐसा लगा जैसे हवा पूरब से आ रही है, जैसे सुगन्ध चारों ओर छा रही है, जैसे बंजर और वीरान खेतों में गेहूं के लाखों पौदे उग रहे हैं।

छः

सबसे बड़ा पाप

जब शंकर बिस्तर से उठा तो सुबह की धूप आम के झुके हुए झूमरों में से छन-छनकर आ रही थी। शंकर ने खिड़की खोली और कूदकर बरामदे में चला गया, जहां हॉकर समाचारपत्र डाल गया था। शंकर ने लपककर समाचारपत्र उठा लिया। उसे खोलते ही जब उसकी दृष्टि मोटे शीर्षक पर पड़ी तो उसका कलेजा धक्-से रह गया और उसकी आंखों में आंसू तीव्र गति से उमड़ आए। उन आंसुओं की झिलमिलाती तहों में से वह शीर्षक तैरने लगा और शंकर उसे समझने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु वह कुछ भी न पढ़ सका और बरामदे में चुपचाप खड़े का खड़ा रह गया।

इतने में उसकी पत्नी बाला उसके लिए चाय का प्याला लेकर आई।

"इतनी रात गए तक तुम अपना लैक्चर तैयार करते रहे। क्या अभी तक तुम्हारा सोचना समाप्त नहीं हुआ?" बाला ने ये शब्द तनिक कटु होकर कहे।

"हुं···नहीं···मगर···" शंकर बड़े बेतुके ढंग से बुड़बुड़ाया।

"मगर क्या?" बाला ने उसके हाथ से समाचारपत्र छीनकर कहा, "इतनी देर से तो उठे हो। और अब भी सोचते रहोगे तो तैयार होकर हमें घुमाने कब ले जाओगे? याद है अपना वायदा? आज तुम्हारे कॉलिज में छुट्टी है।"

"मगर…"

"मैं कोई अगर-मगर नहीं सुनूंगी। तीन महीने से तुम हमें कहीं बाहर नहीं ले गए हो। मैं आज का वायदा नहीं टलने दूंगी। बच्चे सुबह से तैयार हुए बैठे हैं। रंजन, देवी और कान्ता तीनों तैयार हैं। अब तुम भी जल्दी से तैयार हो जाओ। देखो, आज का दिन कितना अच्छा है!" वह शंकर के निकट आ गई।

शंकर ने सिर उठाकर बरामदे से बाहर देखा।

यह दिन भी दूसरे दिनों जैसा था, बिलकुल वैसा ही साफ, स्वच्छ नरम, सुन्दर और चमकीला। आकाश में सूर्य साफ चमक रहा था। कहीं-कहीं सफेद बादलों के टुकड़ों ने अपने बादबान खोल रखे थे और वे राज-हंसों की भांति धीरे-धीरे तैर रहे थे।

थोड़ी देर में शंकर कुटुम्ब को लेकर बस में चौपाटी की ओर जा रहा था। वे लोग बस की ऊपरवाली मंजिल में बैठे हुए थे—शंकर, उसकी पत्नी बाला, उसका बेटा रंजन, बड़ी बेटी देवी और छोटी बेटी कान्ता। छायादार सड़क पर झुके हुए पेड़ों की शाखाएं कभी-कभी सरसराती हुई बस की खिड़कियों के पास से निकल जातीं। सहसा रंजन बस की खिड़की से हाथ बाहर निकालकर एक पेड़ से आम का एक सूखा पत्ता तोड़ने में सफल हो गया। खुशी से चिल्लाकर उसने अपने पिता को आम का वह पत्ता दिखाया, "पापा देखो सोने का पत्ता।"

शंकर ने कहा, "सोने का नहीं आम का है।"

"पर इसका रंग तो सोने का है," रंजन ने कहा, "देखो धूप में कैसा चमकता है!" यह कहते हुए रंजन ने पत्ते को दो अंगुलियों से पकड़कर खिड़की से छनकर अन्दर आने वाली धूप में रख दिया। फिर बच्चे ने खिलखिलाकर पत्ते को हवा में छोड़ दिया। हवा ने उसे अपने कन्धों पर संभाल लिया और पत्ता दूर तक हवा में नाचता हुआ चला गया। बस आगे निकल गई।

शंकर कुछ सोचने लगा।

रंजन ने अगली सीट पर बैठी हुई अपनी दोनों बहनों, देवी और कान्ता से कहा, "देखो, पहले रानीबाग चलेंगे।"

"नहीं रंजन, पहले चौपाटी जाएंगे। पापा ने चौपाटी का टिकट लिया है," कान्ता ने अपने छोटे भाई रंजन से कहा।

रंजन के काले-सीधे बाल, जिनपर बड़ी मेहनत से कंघी की गई थी, अब खिसककर माथे पर आ गए थे। उसकी आंखों के कोनों से काजल फैल गया। आश्चर्य के कारण उसके होंठ एक कली की भांति छोटे हो गए थे। उसने शंकर के हाथ पर अपना छोटा-सा हाथ रखकर पूछा, "नहीं पापा, पहले रानीबाग जाएंगे ना?"

"नहीं, पहले चौपाटी," देवी क्रोधपूर्वक बोली। देवी का स्वभाव काफी गरम है।

"नहीं, पहले रानीबाग," रंजन ने अपनी बहन से डपटकर कहा। रंजन का स्वभाव देवी के स्वभाव से अधिक गरम है।

"तुम दोनों चुप रहो," बाला बोली। बाला शंकर के बच्चों की मां है। उसका स्वभाव सबसे अधिक गरम है। जब वह ज़ोर से चिल्लाई तो बस में बैठे हुए कई लोग उनकी ओर देखने लगे। कंडक्टर मुस्कराने लगा।

कान्ता अब तक नहीं बोली थी, इसलिए अब उसकी बारी थी। कान्ता को कभी क्रोध नहीं आता; सदा एक हल्की-सी मुस्कान उसके चेहरे पर खेलती रहती है, और वह दूसरों को चिढ़ाती रहती है। धीरे-धीरे दूसरों को जलाती रहती है। उसने मुस्कराते हुए कहा, "यह बस चौपाटी जा रही है, जा रही है। टिकट चौपाटी के लिए हैं, लिए हैं। रानीबाग नहीं जाएंगे, नहीं जाएंगे।"

रंजन ने क्रोध में उसे एक घूंसा लगाया। कान्ता ने भी मुक्के से जवाब दिया। देवी ने दोनों को छुड़ाने की कोशिश की तो उसे दोनों ओर से घूंसे पड़े। बाला ने तीनों को मारा तो अच्छा-खासा कोहराम मच गया।

कंडक्टर ने पूछा, "बस रोकूं?"

"नहीं भाई," शंकर ने धीरे से कहा, "यह तो रोज़ का खेल-तमाशा है, तुम कहां तक रोकोगे ?"

"आपके बच्चे बहुत शरारती हैं," कंडक्टर ने कहा।

"हां, भाई बहुत शरारती हैं।"

"आप इन्हें कुछ कहते भी तो नहीं।" पत्नी ने झल्लाकर कहा, "नहीं तो क्या मजाल दम मार जाएं। सुबह से देख रही हूं, इन्हें आपने सर पर चढ़ा रखा है, इनकी हर बात मानी जा रही है।"

रंजन फिर ठिनकने लगा, "नहीं हम तो चौपाटी नहीं जाएंगे। हम तो रानीबाग जाएंगे। हम चौपाटी नहीं जाएंगे, हम तो रानीबाग···"

शंकर ने कंडक्टर से कहा, "बस रोक दो !"

रानीबाग में अफ्रीका से लाए गए पेड़ थे, शेर थे, ज़राफा और शुतुर्मुर्ग थे। बर्मा के सांप थे, बंगाल के चीते थे, कश्मीर के भूरे रीछ थे, झीलों और दलदलों में लोटने वाले मगरमच्छ थे, पानी में डुबकी लगाकर पैसा ढूंढ़ने वाले सील थे, रंग-बिरंगे परों वाले कबूतर थे, क्लर्कों की तरह सूखे हुए ऊंट थे, नेताओं की तरह हरदम बोलने वाले तोते थे, अमीरों की तरह पले हुए सूअर थे।

वहां उत्तरप्रदेश के सांवले, काले लंगूर थे जो अपनी पूंछ से लटक-कर झूला झूल रहे थे। टांगानीका के बिना पूंछ वाले बन्दर थे जो कह रहे थे कि यदि मानव और बन्दर में केवल एक पूंछ का अन्तर है तो फिर हमें चिड़ियाघर में क्यों बन्द कर रखा है। एक कोने में एक गोरा बन्दर धूप में अपने सुनहरे बाल सुखा रहा था।

रंजन ने उसकी ओर मूंगफली फेंकी। गोरे बन्दर ने कोई ध्यान नहीं दिया। वह उसी तरह अपनी नीली आंखें झपकाए गर्व और उदासीनता और शान की मूर्ति बना बैठा रहा।

बच्चे ने शंकर से पूछा, "सब बन्दर मूंगफली खाते हैं, यह क्यों नहीं खाता ?"

शंकर ने कहा, "या तो इसके पेट में दर्द होगा या फिर यह किसी शुद्ध आर्य जाति का होगा और किसी काले बच्चे के हाथ से मूंगफली लेकर नहीं खा सकता।"

"हुंह !" रंजन ने घृणापूर्वक कहा और वह आगे बढ़ गया।

खुली धरती में वांस के जंगल उगे हुए थे। एक छोटे-से बगीचे में एक चीता सोया हुआ था। उसके निकट मादा चीता अपने बच्चों के साथ खेल रही थी। उसकी आंखों से नींद का आलस्य छलक रहा था। वह कभी-कभी धीरे से हाथ मारकर हल्की-सी गुर्राहट के साथ अपने बच्चों को नीचे उतार देती थी जो खेलते-खेलते उसकी पीठ पर सवार हो जाते थे। वांस की एक शाखा पर एक तोता और एक तोती टें-टें करते हुए रानीवाग में आने वाले दर्शकों पर टीका-टिप्पणी कर रहे थे। भूरे, चितकबरे चकोर, सात रंगों वाले मोर, मधुर संगीतज्ञ मैनाएं तथा फाख्ताएं, अवाबीलें, बुलबुलें और बोर्नियो के किरमजी कलगियों वाले पक्षी जिनका हमारे देश में कोई नाम नहीं है। देवी, कान्ता तथा रंजन ने यह सब कुछ देखा। रंजन की आंखों का काजल और भी फैल गया था। देवी की दोनों चोटियां खुल गई थीं और उसने उनके दोनों गुलाबी फीते अपनी मम्मी के हवाले कर दिए थे। वे गुलाबी रेशमी फीते शंकर की पत्नी के हाथ में थे और शंकर के हाथ में कान्ता की सैण्डिल थी, क्योंकि कान्ता घास पर नंगे पांव दौड़ना चाहती थी। तीनों बच्चे बहुत प्रसन्न थे और इसलिए उनके माता-पिता भी बहुत प्रसन्न दिखाई देते थे।

वाला ने शंकर का हाथ पकड़कर कहा, "बच्चों के साथ आज मैं भी हाथी की सवारी करूंगी।"

उसने नर्मी और आग्रह से शंकर की ओर इस तरह देखा जिस तरह कोई छोटी लड़की गरदन उठाकर अपने पिता की ओर देखती है। शंकर

को भी वह उस समय बिलकुल एक छोटी-सी लड़की की तरह हठ करती हुई मालूम हुई। शंकर ने मुस्कराकर कहा, "लोग क्या कहेंगे ? तीन बच्चों की मां होकर···"

"हुंह ! लोग क्या कहेंगे ? और औरतें भी तो सवारी करती हैं। वह देखो, वह जा रहा है हाथी। देखो, कितने बच्चों के साथ उनकी माताएं बैठी हैं। हम भी बैठेंगे। मैं आज तक कभी हाथी पर सवार नहीं हुई हूं···।"

"अच्छा-अच्छा," शंकर ने प्रसन्न होकर कहा।

वे लोग हाथी की सवारी करने चले गए। शंकर पास वाले तालाब की नीली सतह पर खिले हुए कमल देखने लगा। निकट के जंगल के पीछे एक बारहसिंगा खड़ा था। कोंकण प्रदेश की एक मराठी लड़की विहाग राग की लय की तरह सुन्दर और कोमल, अपने बालों में चम्पा के फूलों की वेणी सजाए, अपनी छोटी-सी हथेली पर चने रखे बारहसिंगे को खिला रही थी। एक हाथ से उसे चने खिला रही थी और दूसरे हाथ से उसके माथे पर धीरे-धीरे हाथ फेर रही थी। बारहसिंगे के सींगों पर ऐसी नरम-नरम भूरी रोमावलि थी जैसे पुराने तालाब के पत्थरों पर काई होती है। और जब चने समाप्त हो गए, तो बारहसिंगा अपनी पतली लाल जिह्वा से लड़की की हथेली चाटने लगा। शंकर उस कुंवारी लड़की की आंखों में ममता की कोमलता देख रहा था। सहसा एक तीव्र जन्नाटेदार अट्टहास वातावरण में किसी अबाबील की तरह तैरता हुआ शंकर के कानों में गूंज गया। उसने मुड़कर देखा कि हाथी से उतरकर रंजन ने कान्ता का चाकू छीन लिया था और वह चीखता हुआ, हंसता हुआ शंकर की ओर भागता हुआ चला आ रहा था। कान्ता उसके पीछे-पीछे भाग रही थी।

"हमारा चाकू दे दो।"

"नहीं दूंगा।"

"दे दो।"

"नहीं दूंगा।"

"नहीं दोगे ?" कान्ता ने रंजन के एक धप जमाई।

"नहीं," रंजन ने धप का उत्तर धप से देते हुए कहा।

दोनों गुत्थमगुत्था हो गए।

कान्ता की चोटी खुल गई। उसका फ्राक मैला हो गया। रंजन की निकर से बेर निकलकर धरती पर बिखर गए। बाला को हरे, खट्टे बेर देखते ही क्रोध आ गया। उसने रंजन को कान से पकड़कर दो तमाचे लगाए। रंजन ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। बाला रंजन को पकड़कर नल के पास ले गई और उसकी आंखों के आसपास पुता हुआ काजल धोने लगी। फिर उसने नल के हौज़ में बेर फेंक दिए। बड़ी देर तक रंजन सिसकियां लेता रहा और हौज़ की तह में हरे हीरों की तरह चमकते हुए गोल गोल बेरों को अभिलाषापूर्ण दृष्टि से देखता रहा। और जब तक उसकी मम्मी ने उसे हाइड्रोजन गैस से भरा हुआ नारंगी रङ्ग का गुब्बारा खरीद-कर नहीं दिया, वह हौज़ के पास से नहीं हिला।

गुब्बारा लेकर वह खट्टे बेर भूल गया। फिर मम्मी ने कान्ता को समझा-बुझाकर इस बात पर राज़ी कर लिया कि वह केवल उस एक दिन के लिए अपना चाकू रंजन के पास रहने दे। कान्ता मान गई।

रंजन के एक हाथ में एक लम्बा तागा था, तागे के सिरे पर गुब्बारा था। गुब्बारे में हाइड्रोजन गैस थी, इसलिए गुब्बारा ऊंचे-ऊंचे उड़ रहा था। चार फव्वारों वाले चौक में खड़े होकर कान्ता, देवी और रंजन अपने गुब्बारों को बड़ी देर तक पतंगों की तरह उड़ाते रहे। गुब्बारे फव्वारों से भी ऊंचे उड़ रहे थे। रंजन अपने गुब्बारे को झटके दे-देकर बीच वाले ऊंचे फव्वारे की चोटी पर लाने का प्रयास कर रहा था। सहसा फव्वारे की धार से छूते ही वह गुब्बारा धमाके से फट गया।

रंजन खुशी से चिल्लाने लगा।

चौपाटी पर बहुत भीड़ थी। कान्ता ने अपनी मम्मी का हाथ पकड़ रखा था। देवी और रंजन को शंकर ने थाम रखा था। यहां पर बहुत-

से बच्चे थे, बहुत-सी औरतें थी, बहुत-से मर्द थे। रेत पर औरतें ढाक की पत्तलें बिछाए हुए एक हाथ से सेव-चीवड़ा खाती जाती थीं और दूसरे हाथ से नाक साफ करती जाती थीं। एक जगह सात-आठ बच्चे एकसाथ कागज़ के बिगुल बजा रहे थे। कोई हरे और लाल रङ्ग की ऐनकें खरीद रहे थे। कोई कागज़ी कछुओं, मेंढकों और मछलियों को धागों से बांधे हुए समुद्र-तट पर दौड़ाते हुए भाग रहे थे। एक नवविवाहित जोड़ा अमृतसरी कुलफी वाले की दुकान पर खड़ा आइसक्रीम खा रहा था। दोनों अपनी-अपनी प्लेट से आइसक्रीम उठाते और चम्मचों को मुंह तक ले जाते हुए एक-दूसरे की ओर देखने लगते। इधर ज़बान पर आइसक्रीम घुलने लग जाती, और आंखों में आइसक्रीम की कोमलता और ठंडक और ज़बान पर निगाहों की मिठास तैरने लगती।

शंकर की पत्नी ने धीरे से कहा, "चौथे महीने से है।"

शंकर ने चौंककर पूछा, "तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"वाह ! क्या मैं मां नहीं हूं ?" बाला ने गर्वपूर्वक अपने बच्चों की ओर देखकर कहा, और एकाएक देवी को उठाकर चूम लिया।

फिर वह शंकर का हाथ पकड़कर बोली, "आज मैं पूरी खा लूं ?"

"डॉक्टर ने मना किया हुआ है।"

"बस, आज की आज।"

"अच्छा।"

"और थोड़े से कचालू, और दही-बड़े, और······"

"हां, हां, और समोसे और बारह मसाले की चाट और ज़ीरे का पानी और आम-पापड़ा—आज तुम सब खा लो।"

"क्या बात है ?" शंकर की पत्नी ने आश्चर्यचकित होकर अपने पति की ओर देखकर कहा, "आज तुम हमारी हर बात मान रहे हो। आज तुम कुछ बदले-बदले दिखाई दे रहे हो।"

शंकर चुपके-से मुस्करा दिया। एकाएक उसकी आंखों के सामने समाचारपत्र का वही शीर्षक फिर उभर आया।

शंकर की पत्नी सन्तोष का सांस लेकर बोली, "आज का दिन बहुत अच्छा है।"

आज का दिन सचमुच बहुत अच्छा था—साफ, सुथरा, उजला, नीला, चमकीला, सुनहरा, खुशियों से भरा हुआ। समुद्र-तट पर लड़के गधे और घोड़ों की सवारी कर रहे थे। चीनी बाजीगर एक आश्चर्यचकित भीड़ के बीच में अपने करतब दिखा रहे थे। वह नवविवाहित जोड़ा अब कुलफी वाले की दुकान से हटकर फलों की दुकान पर नारंगी और अनार का रस मिलाकर पी रहा था। बच्चों के गुल-गपाड़े के बीच कभी-कभी माझियों के गीत की पुकार सुनाई दे जाती थी।

जब सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ने लगा तो वे लोग वापस घर पर पहुंच गए। शंकर की पत्नी ने मेज़ पर कॉफी लगाकर रखी और बरामदे में खुलने वाली दो लम्बी-लम्बी खिड़कियां खोल दीं। कॉफी बहुत बढ़िया थी। नारियल के पेड़ों के झुण्ड से परे पश्चिमी क्षितिज पर बादलों ने अपने नारंजी शिविर गाड़ दिए थे और हवा पत्थरों की क्वैरी से घर लौटती हुई मज़दूर-स्त्रियों का गीत अपने साथ ला रही थी। सारे घर में चैन, सुख और सन्तोष का वातावरण छाया हुआ था। शंकर की पत्नी ने बड़े लाड़ से अपना सिर अपने पति की गोद में रख दिया और बोली—

"आज का दिन बहुत अच्छा रहा। आज के दिन तुम बड़े अनोखे ढंग से, प्रेम के सागर और बड़े सुन्दर और प्यारे और क्या कहूं, क्या-क्या दिखाई दिए। यदि आज के दिन की तरह तुम हर रोज़ बदल जाओ तो तुम्हारे जैसा पति दुनिया-भर में ढूंढ़े से भी न मिले।"

शंकर ने धीरे से कहा, "हां, मेरा व्यवहार आज बहुत अच्छा रहा। आज न मैंने तुमसे झगड़ा किया, न मैं बच्चों पर क्रुद्ध हुआ। आज सुबह से मैं तुम्हारे साथ हूं, इसका कारण तुम जानती हो?"

"नहीं," बाला ने शंकर की जांघ पर से अपना सिर उठाकर बड़े आश्चर्य से शंकर की ओर देखकर कहा।

शंकर ने दुःख के आवेग को थोड़ा-सा अभिव्यक्त करते हुए कहा, "आज एथिल रोज़नवर्ग और उसके पति को फांसी दी गई है।"

"क्या ?" वाला संभलकर बैठ गई। रंजन, जो रेडियोग्राम पर रिकार्ड बजाने वाला था, रिकार्ड अपने हाथ में उठाए शंकर के निकट आ गया। शंकर ने कहा, "आज दो निर्दोष, निरीह व्यक्तियों को फांसी दे दी गई।"

"परन्तु उनका दोष क्या था पापा ?" कान्ता ने अपने पिता से पूछा।

न्यूयार्क नगर के मुनरो-स्ट्रीट नामक मुहल्ले में एथिल रोज़नबर्ग नामक एक महिला रहती थी। उसकी आयु चौंतीस वर्ष की थी। उसका पति था जूलियस रोज़नबर्ग। उनके दो बच्चे थे—बड़ी-बड़ी, गहरी-नीली आंखों वाला रोबी, और सुखद धूप-जैसी मुस्कान का जीवित रूप माइकिल। ये सब—एक छोटे-से अमरीकी कुटुम्ब के प्राणी—न्यूयार्क नगर में शान्त और सुखपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे।

जूलियस रोज़नबर्ग एक इंजीनियर था, जिसने एक अपना छोटा-सा मिस्त्रीखाना खोल रखा था। इसी मशीनशॉप में वह दिन-भर काम करता और अपने कुटुम्ब का पेट पालता था। उसकी पत्नी एथिल अपने घर और अपने नन्हे बच्चों की देखभाल में लगी रहती। घर की अवस्था कभी-कभी निर्धनता के किनारे पर भी आ पहुंचती, परन्तु फिर भी वह प्रसन्न थी, क्योंकि उसका पति परिश्रमी था और उससे प्रेम करता था।

उस छोटे-से घर में कभी-कभी डेविड ग्रीनग्रास नामक एक व्यक्ति आया करता था। यह डेविड एथिल का छोटा भाई था। वैसे वह था तबीयत से आवारा। महायुद्ध के दिनों में उसने फौज से कई बार वस्तुएं चुराई थीं। वह एक साधारण-सी शिक्षा प्राप्त किया हुआ एक साधारण-सा मैकेनिक था और अपनी बुरी आदतों के कारण बहुधा संकटों में फंसा रहता था। वह अनेकों बार अपने बहनोई, जूलियस से रुपये ले चुका था,

और अब भी निःसंकोच जूलियस से रुपये मांगता रहता था। इस बात पर दोनों में बहुधा चख-चख हो जाया करती थी, और कभी-कभी मामला लड़ाई-झगड़े तक जा पहुंचता था। एक बार डेविड ने जूलियस से चार हज़ार डॉलर की भारी रकम मांगी। जूलियस ने इन्कार कर दिया। डेविड ने कहा, "एक दिन तुम इसका मज़ा चखोगे!"

यह घटना जून, १९५० में हुई। इसके कुछ दिनों बाद जूलियस और उसकी पत्नी एथिल को गिरफ्तार कर लिया गया। डेविड ने अमरीकी सरकार को बयान दिया था कि वह स्वयं एक जासूस था, और अपने देश के गुप्त सैनिक भेद दूसरे देशों को दिया करता था। उसने अपनी पत्नी रूथ की सहायता से जूलियस रोज़नवर्ग और एथिल रोज़नवर्ग के कहने पर 'लास अलामास प्रोजैक्ट' से परमाणु-शक्ति से सम्बन्धित कुछ भेद चुराए और उन्हें एथिल रोज़नवर्ग और जूलियस के हवाले कर दिया ताकि वे इन रहस्यों को सोवियत रूस तक पहुंचा दें।

डेविड सरकारी गवाह बन गया। उसकी पत्नी रूथ को छोड़ दिया गया। एथिल रोज़नवर्ग और उसके पति जूलियस रोज़नवर्ग को फांसी के दण्ड की आज्ञा दे दी गई। भाई ने बहन और बहनोई के प्राण ले लिए।

इस समाचार से सारे संसार में कोहराम मच गया, क्योंकि अभियोग का विस्तृत विवरण प्रकाशित होते ही तटस्थ और समझदार लोग आसानी से इस परिणाम पर पहुंच गए कि अभियोग झूठा है—एथिल और जूलियस को बलि का बकरा बनाया गया है।

दंड के विरुद्ध अपील की गई। जज ने अपने निर्णय में लिखा कि 'यदि सरकारी गवाह के बयान पर विश्वास न किया जाए तो अपराध प्रमाणित नहीं होता।'

और सरकारी गवाह, डेविड ग्रीनग्रास ने अपने बयान में कहा था कि 'मैंने सन् १९४५ में परमाणु बम का नक्शा और इसके साथ टैक्नीकल भेदों के १२ पृष्ठ जूलियस रोज़नवर्ग को दिए थे, और यह सारी सूचना मैंने

(अपनी साधारण शिक्षा के बावजूद) अपनी स्मरण-शक्ति की सहायता से तैयार की थी ।'

इस बात के सम्बन्ध में एक विख्यात वैज्ञानिक ने कहा था कि डेविड की इस बात में इतनी ही सचाई है जितनी इस बात में कि डेविड आवाज़ की गति से अधिक तीव्र गति से दौड़ सकता है ।'

अभियोग के प्रारम्भ में सरकारी वकील ने अपराध को प्रमाणित करने के लिए एक सौ तेरह गवाहों की सूची अदालत में पेश की थी। इस सूची में (१) विश्वविख्यात परमाणु-वैज्ञानिकों के नाम सम्मिलित थे, (२) एफ० ई० बी० (अमरीकी भेदिया पुलिस) के अधिकारियों तथा केस की छानबीन करने वाले पुलिस-अधिकारियों के नाम थे, तथा (३) रोज़नबर्ग के उन मित्रों के नाम थे जो 'जासूसी में रोज़नबर्ग दम्पती की सहायता करते थे।'

बाद में इन गवाहों में से किसी एक को भी अदालत में पेश नहीं किया गया। केवल सरकारी गवाह और उसकी पत्नी के बयान पर्याप्त समझे गए।

फिर, ये परमाणु बम-सम्बन्धी गुप्त भेद वास्तव में कितने गुप्त थे ? इस सम्बन्ध में अमरीका के परमाणु शक्ति कमीशन की रिपोर्ट में (जो दिसम्बर सन् १९४९ में—अर्थात् अभियोग से कई महीने पहले—प्रकाशित की गई थी यह लिखा है—

'परमाणु शक्ति कमीशन ने उन गुप्त कागज़ों को पेश किया जिनसे यह बात पूरी तरह प्रमाणित हो जाती है कि सोवियत रूस को सन् १९४० में परमाणु बम के रचना-सम्बन्धी गुप्त भेद ज्ञात हो चुके थे।'

तो फिर वे भेद जो सन् १९४० में गुप्त नहीं थे, उन्हें सन् १९५० में प्रकट करने के अपराध में दो निरपराध प्राणियों को क्यों मृत्युदण्ड दिया गया ?

परन्तु क्या फांसी सदा अपराधियों को ही दी जाती है ?

नहीं, कभी-कभी निरपराध निरीह प्राणी भी फांसी के तख्ते पर चढ़ा

दिए जाते हैं। क्यों ?

कोई कोरिया का युद्ध शुरू कर देता है और लाखों अमरीकी युवकों को मौत के घाट उतार देता है। और कोई हिरोशिमा पर बम गिरा देता है और सारे संसार में बार-बार चिल्ला-चिल्लाकर अपनी परमाणु शक्ति और बमों की ठेकेदारी की घोषणा करता है। परन्तु जब अत्याचार को रोक दिया जाता है और जब दूसरे देशों के वैज्ञानिक भी अपनी विद्या और बुद्धि के बल से प्रकृति के रहस्यों का पता लगा लेते हैं तो फिर किसी पर क्रोध उतारना आवश्यक हो जाता है। तब किसी को बलि का बकरा बना दिया जाता है—निरपराध भोले-भाले प्राणियों को मौत के घाट उतार दिया जाता है। जनता के मन में विदेशी जासूसी का डर पैदा करना आवश्यक होता है, इसलिए एथिल और जूलियस रोज़नबर्ग की मौत आवश्यक थी।

उनकी मौत से भी ज़्यादा उन्हें जासूस प्रमाणित करना आवश्यक था।

इसीलिए तो जितना वे अपने निरपराध होने पर ज़ोर देते रहे उतना ही अधिक उनके विरुद्ध अमरीकी समाचारपत्रों में तूफान उठाया गया। फांसी से कुछ दिन पहले, बल्कि कुछ ही घण्टे पहले, उनसे कहा गया कि यदि वे अपना जासूस होना स्वीकार कर लें तो उनके मृत्युदण्ड को आजन्म कारावास के दंड में परिवर्तित कर दिया जाएगा।

इसका उत्तर उन्होंने यह दिया, 'हम शहीद या हीरो बनना नहीं चाहते। हम जीना चाहते हैं, हम मरना नहीं चाहते। हम जवान हैं और जवानी में मौत अच्छी मालूम नहीं होती। हम अपने दोनों बच्चों रोबी और माइकिल को पाल-पोसकर बड़ा करना चाहते हैं। हमारे जीवन का कण-कण हमसे अनुरोध कर रहा है कि हम पुनः अपने बच्चों से जा मिलें और उनके साथ रहते हुए एक सुन्दर, प्यारे कुटुम्ब का छोटा-सा, प्यारा-सा जीवन व्यतीत करें।'

'हम जानते हैं कि हम पर आज जो आरोप लगाया गया है यदि उसे

मान लें तो हमें मौत से छुटकारा मिल सकता है। परन्तु यह मार्ग हमारे लिए खुला हुआ नहीं है, क्योंकि हम निरपराध हैं। हम शुरू से ही अपने निरपराध होने पर अनुरोध करते आए हैं, और यह बात एक पूरी सचाई है जिसे हम किसी भी मूल्य पर छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। हमारे प्राण भी इसके सामने कोई मूल्य एवं महत्त्व नहीं रखते, क्योंकि वह जीवन, जो आत्मा को बेचकर खरीदा जाए, कोई जीवन नहीं है।

'हम अपनी निरपराधिता की घोषणा करते हैं, हम अपने समाज में वापस जाने का सम्मानपूर्ण अधिकार मांगते हैं। हम चाहते हैं कि हम मुक्त होकर इस समाज में एक ऐसे संसार का निर्माण कर सकें जहां हर व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता होगी, शान्ति होगी, रोटी होगी, और गुलाब के फूल···'

बड़े आपत्तिजनक थे तुम्हारे ये विचार, एथिल और जूलियस!

'शान्ति और रोटी, और गुलाब के फूल!'

शंकर कहानी सुनाता-सुनाता चुप हो गया। उसके बच्चों ने क्या समझा क्या नहीं समझा, वह कुछ नहीं जान पाया। उसकी पत्नी क्या समझी क्या न समझी, वह नहीं जान सका। परन्तु यदि आंसू किसी के मन की बात व्यक्त कर सकते हैं तो उसने सोचा कि यह कहानी बहुत दिनों तक इतिहास की आंख का शर्मीला आंसू बनकर चमकती रहेगी।

"आज का दिन कितना अच्छा था," शंकर की पत्नी ने रोते-रोते कहा, "आज का दिन अमरीका में भी इतना ही अच्छा होगा—ऐसी ही सुन्दर धरती होगी, ऐसा ही खुला आकाश होगा, ऐसा ही एथिल का घर होगा, ऐसे ही उनके बच्चे होंगे। और मैं सोचती हूं कि आज के बाद वे कभी इस धरती को न देख सकेंगे, कभी अपने बच्चों से प्यार न सकेंगे। इस समय वे जेल के मुर्दाघर में पड़े होंगे, और उनके बच्चे न जाने कहां, किस रात के अन्धकार में, किस तकिये के नीचे अपने आंसू छिपाए बिलख रहे होंगे, और आज से उन्हें अपने पिता का प्यार और अपनी माता की

गोद कभी नहीं मिलेगी, और कोई उन्हें प्यार से आइसक्रीम नहीं खिलाएगा—और कोई उन्हें रानीबाग नहीं ले जाएगा, और वे चौपाटी पर घोड़ों की सैर नहीं कर सकेंगे।"

शंकर की पत्नी ने रोते-रोते सहसा अपने तीनों बच्चों को अपने गले से लगा लिया।

शंकर-धीरे से उठकर बाहर बरामदे में आ गया।

पश्चिम में क्षितिज के लाल घोड़े और ऊदे-नारंजी खेमे लुप्त हो चुके थे और अब अंगूर के पत्तों की भांति हरी ठंडी शाम आ गई थी। हवा के हल्के, नरम और विषादपूर्ण झोंकों में शंकर को एथिल रोज़नवर्ग और उसके पति के प्यार की सुगन्ध आई—वह सुगन्ध जो शंकर के लिए थी, उसकी पत्नी के लिए थी, उसके बच्चों के लिए थी, और इस संसार में जहां-जहां लोग बसते हैं, बच्चे खेलते हैं और स्त्री और पुरुष प्रेम करते हैं, वहां, उन सब लोगों के लिए, दूर, बहुत दूर से बिजली की फांसी से चलकर यह सुगन्ध आई थी।

आज फिर ईसामसीह मरा था, परन्तु उसका शंकर को इतना दुःख नहीं था।

क्योंकि ईसामसीह तो बार-बार मरता है। वह तो सन् १९२० में भी मरा था, जब अमरीकी पूंजीपतियों ने दो इटैलियन मज़दूरों—साको और वान ज़ैती—को फांसी दी थी। वे लोग भी रोज़नवर्गों की भांति निरपराध थे। उस समय भी सारी धरती के लोगों के दिलों में संताप और शोक का तूफान उमड़ा था। ईसा तो ईसा से पहले भी मरा था और आज के बाद भी कोई न कोई ईसा मरता रहेगा। परन्तु शंकर को दुःख इस बात का था कि रोमनों ने तो केवल ईसा को सूली पर लटकाया था, पर अमरीकी पूंजीपतियों ने मरियम को भी फांसी पर चढ़ा दिया था।

जब रोज़नवर्ग को बिजली की फांसी से बांधा गया तो वह कहीं नहीं देख रहा था। उसकी दृष्टि न धरती पर थी, न आकाश पर, न सामने बैठे

हुए अमरीकी पादरियों और अधिकारियों पर। उसकी दृष्टि कहीं दूर, बहुत दूर, घूमती हुई दिखाई देती थी...।

लेकिन एथिल बिजली के पहले झटके से नहीं मरी। एक बार—दो बार—तीन बार—पांच बार बिजली के भयंकर प्रलंयकर झटके उसके शरीर में मारे गए। हर झटके पर उसकी छाती धमककर आगे आ जाती...वह चीखी नहीं, चिल्लाई नहीं। उसने इस असीम कष्ट में यह भी नहीं कहा कि 'हे प्रभो! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया'—क्योंकि वह मरियम थी, वह ईसामसीह की मां थी।

अंगूर के पत्तों जैसी गहरी शाम और अधिक गहरी हो गई है।

शंकर की पत्नी रसोईघर में चली गई है।

रसोईघर से इलायची और जीरे की सुगंध आ रही है। परन्तु शंकर के नथुनों में वही सुगंध शेष है तथा एक अन्य—आज से भी बहुत पुरानी सुगंध—आ रही है।

सन् १५४३ में वैज्ञानिक कौर्पनिकस पोप के पादरियों की क्रोधाग्नि में शिकार होकर अपमान और निर्धनता की अवस्था में मर गया। उसने तीस वर्ष के निरन्तर परिश्रम से एक पुस्तक लिखी जिसमें कौर्पनिकस ने पहली बार दुनिया को बताया कि पृथ्वी स्थिर नहीं है, यह घूमती है—अपनी धुरी पर और साथ ही सूर्य के चारों ओर। विश्व का केन्द्र यह पृथ्वी नहीं है वरन् सूर्य है। सूर्य हमारे सौर-जगत् का केन्द्र है जिसके गिर्द दूसरे नक्षत्र घूमते हैं और हमारी पृथ्वी भी अनेकों नक्षत्रों की भांति सूर्य के गिर्द एक निश्चित मार्ग पर घूमती रहती है।

आज हम सब इसे एक बहुत साधारण बात समझते हैं—ऐसी कि इसके सम्बन्ध में कोई कहानी लिखने की आवश्यकता नहीं। परन्तु आज से चार सौ साल पहले इसी साधारण-सी बात को स्पष्ट करने के अपराध में ब्रूनो को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी थी।

ब्रूनो नेपल्ज़ नगर में एक साधारण पादरी था। परन्तु जब उसने

कौर्पनिकस की पुस्तक पढ़ी तो उसे अपने पादरियों की दुनिया बहुत संकुचित और छोटी लगी। उसने संसार को केवल यह बताने के लिए कि पृथ्वी स्थिर नहीं है वरन् घूमती है, सारे यूरोप का दौरा किया। हर स्थान पर उसे संकुचित विचारों के पादरियों, पुराने विचारों के वैज्ञानिकों और मूढ़ कठोर शासकों के अत्याचारों का निशाना बनना पड़ा।

नेपल्ज़ से भागकर वह जिनेवा पहुंचा। जिनेवा से पैरिस। पैरिस में भी उसे सुरक्षा प्राप्त न हुई। पैरिस से औक्सफोर्ड, लन्दन, विटनबर्ग।

प्राग, हैग्डनबर्ग, फ्रैंकफर्ट···पृथ्वी घूमती है। परन्तु आदमियों के मस्तिष्क अभी स्थिर थे इसलिए वे अभी पृथ्वी को स्थिर समझने पर कटिबद्ध थे।

वेनिस में उसे पकड़ लिया गया, और रोम भेज दिया गया। रोम में उसे भयंकर यातनाएं दी गईं। उससे बार-बार कहा गया कि वह कह दे कि पृथ्वी घूमती नहीं है वह स्थिर है, तो उसे छोड़ दिया जाएगा।

परन्तु ब्रूनो नहीं माना। वह अपने विश्वास पर अटल रहा।

अन्ततः ब्रूनो को जीवित ही आग में जला दिया गया।

१७ फरवरी सन् १६०० को नेपल्ज़ के निवासी ग्योरदानो ब्रूनो को आग में जीवित जला दिया गया। उसकी मृत्यु का तमाशा देखने वालों में पोप और उसके ५० प्रतिष्ठित कार्डिनल भी उपस्थित थे।

आज हमें यह बात अत्यन्त मूर्खतापूर्ण और बेहूदा दिखाई देती है कि पृथ्वी के घूमने की बात एक अपराध समझी जाए और इस बात का प्रचार करने वाला जीवित ही आग में जला दिया जाए।

परन्तु हमारी आज की दुनिया में आज के दिन एक ऐसी ही घटना हुई है। आज दो निरपराध प्राणियों को एक झूठे अपराध में पकड़कर बिजली की रौ से जला दिया गया है। उनका अपराध केवल यह था कि वे संसार में शान्ति चाहते थे।

आज १९ जून सन् १९५३ के दिन, कुछ लोगों की दृष्टि में 'शान्ति' सबसे बड़ा पाप है—जैसे सोलहवीं शती में यह मानना कि 'पृथ्वी घूमती

है' सबसे बड़ा पाप समझा जाता था।

शान्ति, रोटी, और गुलाब के फूल!

रात बहुत जा चुकी है। चारों ओर गहरा सन्नाटा है—आकाश से पृथ्वी तक पूर्ण निस्तब्धता। वायु तक सांस नहीं ले रही।

"मैं सोचती हूं," शंकर की पत्नी ने पूछा, "रोज़नबर्ग के दोनों बच्चे इस समय क्या कर रहे होंगे?"

शंकर चुपचाप बैठा रहा, रूमाल से अपनी गीली ऐनक साफ करता रहा।

बिजली के एक बड़े-से लैम्प की रोशनी में तीनों बच्चे पढ़ रहे थे, और आपस में कुछ बातें भी कर रहे थे। फिर वे तीनों जैसे किसी उद्देश्य को लेकर वहां से उठे और अपने पिता के पास आकर खड़े हो गए।

रंजन ने आगे बढ़कर कुर्सी पर हाथ रख लिया।

शंकर ने पूछा, "क्या बात है?"

रंजन बोला, "पापा! आप रोज़नबर्ग के बच्चों को यहां बुला लीजिए—रोबी और माइकिल को।"

"क्यों

"वे हमारे घर में रहेंगे।"

रंजन की मां ने अपने पति की ओर देखा।

शंकर ने कहा, "परन्तु तुम उनसे लड़ोगे।"

"नहीं," रंजन ने धीरे से कहा और धीरे से अपना चाकू झिझकते-झिझकते आगे बढ़ाकर कहा, "मैं अपना चाकू रोबी को दे दूंगा।"

देवी बोली, "और मैं यह परियों की कहानी की नई पुस्तक माइकिल को दे दूंगी।"

रंजन बोला, "वे हमारे भाई बनकर रहेंगे पापा! उनको पत्र लिख दीजिए। मैं उनको अपने साथ स्कूल ले जाऊंगा, सैंट हैलिना हाईस्कूल में। मैं उनको दस तक की गिनती सिखा दूंगा—वन, टू, थ्री, फोर, फाइव,

सिक्स, सैविन्, एट्, नाइन, टैन् ।"

रंजन दस तक पूरी गिनती गिनकर बोला, "पापा, क्या उन्हें दस तक की गिनती आती है ?"

रंजन की मां ने बेटे को गले से लगा लिया ।

सुनते हो—न्यूयार्क, शिकागो और सैन-फ्रान्सिस्को के मुनाफाखोरो ! आप रंजन, शंकर का बेटा, रोज़नबर्ग के बेटे का भाई है । आज संसार के सारे बच्चे तुम्हारे विरुद्ध संगठित हो रहे हैं । क्या तुम्हें दस तक की गिनती आती है, वॉल-स्ट्रीट के बैंकरो ! दस तक की या सौ तक की, या सौ हज़ार तक की ? तो गिनो—कितने लाखों और करोड़ों बच्चे आज की रात तुमसे अलग होकर रोज़नबर्ग के बेटों से मिल गए हैं । तुम कहां-कहां अपनी सूली गाड़ोगे ? और किस-किसको अपनी बिजली की फांसी से मौत के घाट उतारोगे ? मूर्खो ! यदि पोप पृथ्वी के घूमने को नहीं रोक सका था, तो क्या तुम शान्ति के आदोलन को रोक सकोगे ? शंकर सोचता रहा ।

कौपर्निकस और ब्रूनो···साको और वान ज़ैतो···एथिल और रोज़न-बर्ग···रोबी और रंजन···गिनते जाओ । मगर कहां तक गिनोगे ? ये डॉलर नहीं हैं जिन्हें तुम अपनी मुट्ठी में दबोच लोगे । ये मानव-पुत्र हैं—स्पेन की इन्क्वीज़िशन से बिजली की फांसी तक । मानव-पुत्र को आज तक कौन रोक पाया है ?

आधी रात !

बच्चे सो रहे हैं, बच्चों की मां सो रही है, सारा घर सो रहा है ।

आंखें ऐसी तो कभी न जली थीं, इस तरह तो कभी खुश्क न हुई थीं ।

शंकर शयनागार से बाहर आ जाता है और बहुत धीरे से पाल रोबसन का रिकार्ड ग्रामोफोन पर लगा देता है—'होली नाइट ।'

'खामोश रात ! पवित्र रात !'

पॉल रोबसन का गम्भीर संगीत सारे वातावरण पर छा जाता है। बाहर बूंदें गिरने लगती हैं। धरती की सौंधी-सौंधी सुगन्ध नथनों में उमड़ने लगती है।

खामोश रात ! पवित्र रात ! रोज़नबर्ग के बलिदान की तरह खामोश और पवित्र !

एक नाटक

हाइड्रोजन बम के बाद

पात्र

एक नौजवान नकाबपोश

दो वैज्ञानिक

बैंकर

कवि

मां

बच्चा

कुछ राजनीतिज्ञ

एक गधा

गधे के चार बच्चे

वनमानस, लंगूर, शेर, मेंढ़े, भेड़, बकरियां आदि

जो अभिनेता जानवर-पात्रों का अभिनय करें, उन्हें जानवरों का पूरा जामा देने की बजाय पशुओं के केवल नकाब दिए जाएं।

प्रारम्भ

[जब पर्दा उठता है तो स्टेज के ठीक बीच में पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई दिखाई देती है। पृष्ठभूमि में फैला हुआ आकाश है जिसकी गहराइयों में सितारे टिमटिमा रहे हैं और आग्नेय गैसों के गोले चक्कर खा रहे हैं और दूर तक एक सिरे से दूसरे सिरे तक दूधिया तारों की आकाश-गंगा खिलती चली गई है।

चारों ओर पूर्ण निस्तब्धता है। एक हल्की-हल्की, मद्धम-मद्धम-सी चांदनी चारों ओर छिटकी हुई है।

स्टेज की दाईं ओर एक आदमी अर्धअन्धकार, अर्धप्रकाश में खड़ा है। उसका चेहरा पृथ्वी की ओर है और पीठ दर्शक की ओर। वह चुपचाप, एक बुत की तरह निश्चल व निश्चेष्ट खड़ा है, और इस सारे दृश्य में इसी तरह खड़ा रहता है।

कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद एक आवाज क्षितिज की ओर से आती हुई वातावरण में गूंजने लगती है—]

कोरस—बहुत समय नहीं बीता
वह आदमी
इस पृथ्वी पर रहता था।
वह फूलों के पास गया

फूलों ने उसे सुगन्ध दी ।
वह शहद की मक्खी के पास गया
शहद की मक्खी ने उसे शहद दिया ।
वह नारी के पास गया
नारी ने उसे चांद और सूरज दिए ।
और वह बहुत बड़ा हो गया ।

वह इस लोक का देवता था ।
घास उसके पाँव के नीचे
मखमल का गालीचा बन जाती थी ।
पेड़ों ने बांहें फैलाकर उसे सेब दिए ।
पशु अपना दूध लाए ।
नन्हे-नन्हे क्षुद्र कीड़ों ने शहतूत के पत्ते खाए
और उसके लिए रेशम के जाल उगले ।
वायु ने उसे सांस दिया, प्रकाश ने शक्ति, पानी ने गति···
और वह बहुत बड़ा हो गया

उसने अपना सिर ऊंचा किया
और आकाश पर अपनी निगाह की कमन्द फेंकी
और सितारों पर पांव रखता हुआ आकाश-गंगा को फलांग गया ।
फिर उसने बादलों से इन्द्रधनुष को छीन लिया ।
और उसे हल की तरह धरती में गाड़ दिया ।
और धरती की छाती से गेहूं का दाना पैदा किया ।
फिर एक दिन वह परमाणु के हृदय में घुस गया
और वहां से एक जलता हुआ बम निकाल लाया—
यद्यपि वह मोती भी निकालकर ला सकता था ।

सहसा वायु का रंग उड़ गया
और दिशाओं के गाल पीले पड़ गए।
भूमि किसी पेड़ की शाखा की भांति कांपने लगी।
आकाश व्याकुल हो उठा।
गाय ने अपने बछड़े की ओर देखा।
फूल ने अपनी सुगन्ध के लिए पुकार की।
संगीत अपनी बुलबुल के लिए रोया।
और भविष्य अपनी कली के लिए।
बच्चे ने आगे बढ़कर उसका हाथ थामा
परन्तु आदमी ने अपने बच्चे का हाथ झटक दिया
और आगे बढ़कर बम को हवा में उछाल दिया

[स्टेज पर एक जोर का धमाका होता है। रोशनी एक कौंदे की तरह लपकती है। फिर चारों ओर धुन्ध, धूल, आग्नेय हवाओं के फर्राटे, बच्चों और औरतों की हृदय-वेधी चीत्कार! अंधेरे में लोग गिरते-पड़ते, छाया की भांति भागते दिखाई देते हैं। फिर पूर्ण निस्तब्धता छा जाती है। अब कहीं कोई आवाज नहीं है, कोई गति नहीं है, कोई रोशनी नहीं है—केवल अन्धकार ही अन्धकार है।]

(पर्दा)

दृश्य पहला

[जब पर्दा उठता है तो स्टेज के बाइँ ओर अन्त में विंग के निकट एक छोटा-सा टिकटघर दिखाई देता है जिसके ऊपर मोटे अक्षरों में लिखा है—

आदमियों का चिड़ियाघर

टिकट चार आने

इस टिकटघर की खिड़की पर एक लंगूर बैठा है और टिकट काट-काटकर दे रहा है। टिकटघर के सामने जानवरों का एक लम्बा क्यू लगा हुआ है। इस क्यू में बन्दर, बकरी, शेर, खरगोश, चीते, भेड़िये, गैंडे, मेंढे, गधे आदि अनेक प्रकार के जानवर दिखाई पड़ रहे हैं जो साफ़-सुथरे कपड़े पहने अपने बाल-बच्चों के साथ टिकट खरीद रहे हैं।

टिकटघर के बिलकुल समीप चिड़ियाघर का द्वार है जिसकी लोहे की महराब पर वही शब्द लिखे हुए हैं—

आदमियों का चिड़ियाघर

लोहे के इस द्वार के बाहर एक बनमानस घंटी बजा-बजाकर चिल्ला रहा है—]

वनमानस—आइए, आइए, आदमियों का चिड़ियाघर देखिए

भू-मंडल पर आदमियों का पहला और अन्तिम चिड़ियाघर

स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष्य में विशेष रिआयत

चार आने का टिकट दो आने में

महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष रिआयत

एक टिकट एक आने में

स्वतन्त्रता-दिवस की खुशी में···

[स्टेज के बीच में एक गधा अपने चार बच्चों को साथ लिए चल रहा है। क्यू धीरे-धीरे आगे बढ़ता जाता है। एक बच्चा उससे पूछता है—]

गधे का बच्चा नं० १—बापू, यह स्वतन्त्रता-दिवस कैसा है ?

गधा—बेटा, आज से दस वर्ष पहले जानवरों ने आदमी की दासता से छुटकारा पाया था। उस दिन की खुशी में हम लोग स्वतन्त्रता दिवस मनाते हैं।

गधे का बच्चा नं० २—हमने यह स्वतन्त्रता कैसे प्राप्त की थी ?

गधा—बेटा, आज से दस वर्ष पहले इस संसार में मानव का राज्य था। उस समय यह संसार आज की तरह उजाड़ और वीरान नहीं था। उस समय धरती का अधिकांश भाग हरा-भरा और उपजाऊ था। उस समय मानव ने बड़ी उन्नति की थी। वे लोग धरती के चप्पे-चप्पे पर फैल गए थे और हम जानवरों की अपेक्षा बड़ा अच्छा और सुन्दर और आनन्द से भरा जीवन व्यतीत करते थे।

गधे का बच्चा नं० १—फिर क्या हुआ ?

गधा—फिर मनुष्य-जाति में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में एक-दूसरे को मिटाने के लिए बड़े-बड़े भयंकर हथियार प्रयुक्त किए गए। अन्त में बहुत बड़े हाइड्रोजन बम छोड़े गए। इन बमों ने सारे संसार में से मनुष्यों की आबादी को नष्ट कर दिया। केवल मनुष्यों की आबादी ही नहीं, जंगल के जंगल झुलसकर रह गए, और उनके

साथ-साथ जहां-जहां इन बमों की विषैली गैसें और किरणें फैलीं, वहां-वहां के सारे जानवर भी मर गए—हाथी, घोड़े, शेर, बकरी सब प्राणी मारे गए। यही नहीं, वरन् घास और पेड़-पौधे तक नष्ट हो गए।

गधे का बच्चा नं० ३—फिर हम कैसे बच गए ?

गधा—संयोग से हिमालय के पहाड़ों से घिरी हुई कुछ घाटियां इन बमों के विषैले प्रभाव से बच गईं। यह भी एक संयोग की बात थी कि वहां कोई मनुष्य नहीं था, केवल थोड़े-से जानवर थे जो बच गए और जिनकी सन्तान हम लोग हैं, जो इस नष्ट-भ्रष्ट संसार पर मनुष्यों के स्थान पर राज्य कर रहे हैं।

गधे का बच्चा नं० २—जब सब आदमी मर गए थे तो यह आदमियों का चिड़ियाघर कहां से आया ?

गधा—पांच वर्ष तक इन बमों का प्रभाव सारे वायुमण्डल पर और धरती पर रहा। इसके बाद ज्यों-ज्यों वातावरण शुद्ध होता गया, जानवरों ने, अर्थात् हम लोगों ने, जो इस समय सृष्टि के सिरमौर समझे जाते हैं, आगे बढ़कर जीवन की पताका को थामा और इसे फिर से धरती पर फैलाना चाहा। हमारे इन प्रयत्नों के सिलसिले में हमारे वीर स्काउट संसार के कोने-कोने में पहुंचे। उन्हें ये थोड़े-से मनुष्य कहीं-कहीं किसी अंधेरी गुफा में छिपे हुए मिले—ये लोग जो अपनी जाति के अन्तिम चिन्ह हैं, अपनी सभ्यता-संस्कृति के अन्तिम प्रतिनिधि। तब जानवरों की एक सभा हुई और उसमें यह निश्चय हुआ कि इन सब मनुष्यों को लाकर एक चिड़ियाघर में बन्द किया जाए जहां अपने जानवर भाइयों और बहिनों की शिक्षा-दीक्षा के लिए इनकी प्रदर्शनी की जाए ताकि हमारी भावी सन्तानें इन्हें देखें और इनकी राक्षसी प्रवृत्तियों से शिक्षा ग्रहण करें।

बैंकर

[क्यू में चलता-चलता गधा इस समय ठीक टिकटघर की खिड़की के सामने आ जाता है। वह खरीज आगे बढ़ाकर बनमानस से कहता है—"एक मेरे लिए और चार बच्चों के लिए रिआयती टिकटें।" बनमानस 'बहुत अच्छा' कहकर टिकटें देता है। गधा टिकटें लेकर अपने बच्चों के साथ द्वार के अन्दर प्रवेश करता है। गेट के साथ ही लोहे के एक जंगले के पीछे एक लम्बा दुवला-पतला आदमी दिखाई पड़ता है। वह खाकी रंग की निकर और फटी बनियान पहने हुए हैं, और लम्बी नाक पर बार-बार अपना चश्मा ठीक करता जाता है। कभी-कभी वह अपनी गंजी चिन्दिया खुजलाने लगता है और कभी-कभी जानवरों की ओर देखकर मुस्कराने लगता है। लोहे के जंगले के अन्दर एक छोटा-सा तालाब है जिसमें एक आदमी अच्छी तरह तैर सकता है। लम्बा आदमी अपने दुबले-पतले हाथ जानवरों की ओर बढ़ाकर नाक में बोलता है—"जल्दी करो, जल्दी करो, अशर्फी निकालो। हमारे पास फालतू टाइम नहीं है, हमें बोर्ड की मीटिंग में जाना है।"]

गधे का वच्चा नं २—यह बोर्ड की मीटिंग क्या होती है वापू ?

गधा—बेटा, यह आदमी अपने देश का सबसे बड़ा बैंकर था। अपने देश के व्यापार का एक बहुत बड़ा भाग इसके हाथ में था। यह हर रोज़ लाखों अशर्फियों से खेलता था। इसलिए इसे अशर्फियां बहुत पसन्द थीं। इन अशर्फियों की संख्या को बढ़ाने के लिए इसने दूसरे देशों के व्यापार को भी अपने हाथ में लेना चाहा। जब वहां के लोगों ने इसका विरोध किया, तो इसने हाइड्रोजन बम बनाने के लिए एक बोर्ड वनाया। यह स्वयं इसका अध्यक्ष बना और स्वयं अपनी देख-रेख में हाइड्रोजन वम तैयार कराने लगा। जब इसने वहुत-से बम तैयार कर लिए, तो इसने अपनी जान बचाने के लिए धरती के अन्दर एक गुप्त और सुरक्षित स्थान तैयार कराया और युद्ध प्रारम्भ

कराके स्वयं उसमें छिपकर बैठ गया। मानव-जाति को नष्ट करने में इस पाजी का बहुत बड़ा हाथ है। जब हमारे स्काउटों ने इसे पकड़ा तो यह पिस्तौल हाथ में लिए अशर्फियों के एक बहुत बड़े ढेर पर बैठा था। हमारे दो-तीन स्काउट इसे पकड़ने के प्रयत्न में मर गए। परन्तु अन्त में हमारा गैंडा इसे पकड़ने में सफल हो गया। तुम जानते हो कि गैंडे पर पिस्तौल की छोटी-छोटी गोलियों का कोई प्रभाव नहीं होता।

गधे का बच्चा नं० ४—(**अपने लम्बे-लम्बे कानों से 'ताली' बजाकर**) अहा-हा-हा ! अच्छा हुआ गैंडे ने इसे पकड़ लिया।

बैंकर—(**चश्मा ठीक करके चुटकी बजाते हुए**) जल्दी करो, अशर्फी निकालो, हमारे पास टाइम नहीं है।

[गधा जल्दी से बटुवे से सोने का एक सिक्का निकालकर तालाब में फेंकता है। बैंकर चश्मे को तालाब के किनारे रखकर जल्दी से तालाब में डुबकी लगाता है और तालाब के फर्श पर से चमकती हुई अशर्फी को अपने हाथ में पकड़कर बाहर ले आता है।]

बैंकर—(**अशर्फी को चूमते हुए**) अशर्फी ! हा-हा-हा ! अशर्फी ! हा-हा-हा ! एक पूरी अशर्फी···संसार की सबसे सुन्दर चीज़···एक अशर्फी ···हा-हा-हा !! (**बैंकर खुशी से नाचने लगता है।**)

गधे का बच्चा नं० १—यह इतना खुश क्यों हो रहा है ?

गधा—बेटा, यह बैंकर सोने का पुजारी है। इसका सिद्धान्त यह है कि सोना जीवन के लिए नहीं है, वरन् जीवन सोने के लिए है। यह जीवन-भर सोना इकट्ठा करने में लगा रहा, यहां तक कि इसने अपनी जाति को भी अपने इस लोभ की बलिवेदी पर बलिदान कर दिया।

गधे का बच्चा नं० २—परन्तु सोने को लेकर यह क्या करेगा ? यह इसे खा नहीं सकता—घास की तरह; इसे पी नहीं सकता—पानी की तरह; इसमें से कुछ उगता नहीं—धरती की तरह···बीज को धरती

में डाल दो—फसल पैदा हो जाएगी। सोने के टुकड़े को धरती में दबा दो—वही एक टुकड़े का टुकड़ा रहता है। ऐसी चीज़ को इकट्ठा करने से भला क्या लाभ ?

[इतने में एक मेंढ़ा तालाब में एक अशर्फी फेंकता है। बैंकर फिर अपना चश्मा रखकर तालाब में अशर्फी निकालने के लिए कूद पड़ता है। बैंकर अशर्फी निकालकर बाहर आता है, इतने में गधे का दूसरा बच्चा तालाब में एक गुलाब का फूल फेंकता है। बैंकर झट झपट्टा मारकर उसे हाथ से पकड़ लेता है, परन्तु उसे देखकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालता है और क्रोध के आवेश में चिल्लाने लगता है—]

बैंकर—ओ ब्लडी स्वाइन[1]! गधे के मूर्ख बच्चे! हमको अशर्फी की बजाय गुलाब का फूल देता है ? हमारा टाइम खराब करता है ? हम तुमको जान से मार देगा, तुम्हारे सिर के ऊपर ऐटम बम दे मारेगा, डर्टी डाग[2]! हम तुमको···

[बैंकर अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाता क्योंकि गधे ने जेब से एक और अशर्फी निकालकर तालाब में फेंक दी है और बैंकर उसे निकालने के लिए फिर तालाब में कूद पड़ता है। वह तैरता हुआ पानी के अन्दर अशर्फी ढूंढ़ रहा है।

गधा—इसे गुलाब के फूल से बड़ी घृणा है।

गधे का बच्चा नं० १—क्यों ?

गधा—वास्तव में इसे हर उस वस्तु से घृणा है जो सोना नहीं है। इसीलिए हम लोगों ने चिड़ियाघर में इसके लिए यह पानी का तालाब बना दिया है ताकि यह दिन-भर डुबकियां लगाता रहे और अशर्फियां निकालता रहे। शाम तक हर रोज़ इसके पास ५०-६० अशर्फियां इकट्ठी हो जाती हैं। यह रात के समय बैठकर उन्हें गिनता रहता है, रात-भर सोता नहीं, बस अशर्फियों को बार-बार गिनता रहता है। सुबह चौकीदार इससे अशर्फियां ले जाता है।

---

१. सूअर के बच्चे २. गन्दे कुत्ते।

गधे का बच्चा नं० ३—तो यह रोता नहीं ?

गधा—नहीं। इसका चौकीदार एक बन्दर है। वह बहुत समझदार है। वह इससे यह कहकर अशर्फियां ले लेता है कि इन्हें तुम्हारे बैंक में जमा करने जा रहा हूं। वह हर रोज़ इसे कागज़ की एक रसीद दे देता है। कोने में वह कागज़ों का जो एक पुलन्दा तुम देख रहे हो, वे उन अशर्फियों की रसीदें हैं। इन्हें यह बैंकर बहुत संभालकर रखता है।

गधे का बच्चा नं० ४—कागज़ के इन पुर्ज़ों का यह क्या करेगा ?

गधा—यही कागज़ के पुर्ज़े इसका जीवन-धन, इसका सर्वस्व हैं! जब मरेगा तो इतिहास इन कागज़ के पुर्ज़ों को देख-देखकर हंसेगा और रोएगा और कहेगा—मानव-जाति की पूरी आबादी इन कागज़ के पुर्ज़ों के लिए मरते-मरते मर गई। आओ, अब आगे चलें।

[गधा और उसके बच्चे आगे चले जाते हैं।]

कवि

[बैंकर के जंगले के निकट, एक दूसरे जंगले में, गोल चेहरे और बड़ी-बड़ी आंखों वाला एक व्यक्ति अपने हाथ में कागज़ का एक पुर्ज़ा लिए खड़ा है। उसके दूसरे हाथ में पेन्सिल है, जिससे वह कागज़ पर बार-बार कुछ लिखता है। वह पेन्सिल को कान पर रखता है, फिर पेन्सिल लेकर कुछ लिखता है, फिर उसे कान पर लगा लेता है। इस आदमी के चारों ओर एक सुन्दर फुलवाड़ी है जिसमें अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे फूल खिले हुए हैं। परन्तु यह व्यक्ति मानो अपने आसपास की दुनिया से विरक्त और उदासीन है। वह इधर-उधर टहल रहा है और बीच-बीच में रुककर कागज़ पर कुछ लिखता जाता है। सहसा यह आदमी ऊंची आवाज़ से पढ़ने लगता है—]

कवि—मैकदे[1] की ज़मीं[2] नहीं बदली,
सितवते-सादनीं[3] नहीं बदली।
वह तमन्ना[4] जो एक मुद्दत से
दिल में थी जागज़ीं[5], नहीं बदली।
हुस्न वालो! तुम्हें मुबारक हो!
इश्क की सरज़मीं नहीं बदली।
तू ही ऐ दिल! बदल गया वर्ना[6]।
कोई सूरत हसीं[7] नहीं बदली।

गधा—सारी दुनिया बदल गई, परन्तु इसके लिए कुछ नहीं बदला।

गधे का बच्चा नं० १—यह कौन है?

गधा—यह कवि है।

गधे का बच्चा नं० २—यह क्या कह रहा है?

गधा—अपनी प्रिया की याद में कविता पढ़ रहा है।

गधे का बच्चा नं० ३—इसकी प्रिया कहां है?

गधा—वह हाइड्रोजन बम के आक्रमण में मर गई।

गधे का बच्चा नं० ४—इसने उसे बचाने का प्रयत्न नहीं किया?

गधा—जब हाइड्रोजन बम बना था तो कुछ बुद्धिमान् लोग (मनुष्य-जाति में भी थोड़े-से बुद्धिमान् लोग थे) इसके पास एक आवेदन-पत्र लेकर आए थे जिसमें सब लोगों से कहा गया था कि वे राजनीतिज्ञों को मज़बूर करें कि इस विनाशकारी युद्ध को प्रारम्भ न करें, ताकि मनुष्य-जाति इस पूर्ण नाश से बच जाए। वे लोग उस आवेदन-पत्र पर इस कवि के हस्ताक्षर कराना चाहते थे, परन्तु इसने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।

---

१. मधुशाला २. धरती ३. शराब के प्याले का गर्व ४. अभिलाषा ५. छपी हुई ६. अन्यथा ७. सौंदर्य की प्रतिमा

गधे का बच्चा नं० १—क्यों ?

गधा—इसने कहा, मैं केवल सौंदर्य का उपासक और काव्य-सुन्दरी का पुजारी हूं। मेरा क्षेत्र केवल कविता तक सीमित है, राजनीति से मेरा किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है।

[कवि फिर गाने लगता है]

कवि—इसी का नाम हो शायद मुहब्बत
खता[1] उनकी है, हम शरमा रहे हैं।
कहीं तारे-नज़र उलझा हुआ है
नकाब[2] उठती नहीं, शरमा रहे हैं।
भरी बरसात की उफ रे जवानी
घटाओं को पसीने आ रहे हैं।
अजल[3] को रोकना, आवाज़ देना
ज़रा हम मैकदे[4] तक जा रहे हैं।

गधे का बच्चा नं० २—इसका मैकदा कहां है ?

गधा—पता नहीं। परन्तु बेटा, इस आदमी की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। इसके शब्दों में जादू और इसकी कल्पना में उकाब की-सी उड़ान थी। यदि यह चाहता तो अपने गीतों से संसार को आने वाले महा-संकट की चेतावनी दे सकता था। यदि यह चाहता तो अपनी कविता को ढाल बनाकर अपनी मधुबाला और प्याले और मधुशाला के लिए एक वीर योद्धा की तरह लड़ सकता था। परन्तु इसने अपने चारों ओर से आंखें बन्द कर लीं और अपने सुन्दर, पर असत्य, कल्पना-जगत् में खो गया। परिणाम यह हुआ कि इसकी मधुशाला इसके सामने नष्ट-भ्रष्ट हो गई, इसकी मधुबाला ने इसके सामने दम तोड़

१. अपराध २. पर्दा ३. मृत्यु ४. मधुशाला

दिया, परन्तु यह अपनी कविता और कल्पना की अन्धी ऐनक पहने न तो अपनी मरती हुई प्रिया को देख सका और न मानव-जाति की अन्तिम चीत्कार सुन सका।

[कवि फिर गाने लगता है—]

कवि—हुस्न के साज़पे' इक गीत सुनाके जाना।
इश्क को एक नई उलझन में फंसाके जाना।
मेरी सोई हुई किस्मत को जगाके जाना।
मद-भरी आंखों से मदहोश बनाके जाना।

गधा—जब यह उन मद-भरी आंखों की रक्षा न कर सका तो कविता-कामिनी ने मानव-जाति से सदा के लिए अपना नाता तोड़ लिया और वह सुगन्ध की भांति धरती की गोद में छिप गई। अब यह जो कुछ कह रहा है वह कविता नहीं, एक निष्प्राण, शक्तिहीन कल्पना की गूंज-मात्र है। आओ, अब आगे चलें।

वैज्ञानिक

[गधा अपने चारों बच्चों को लेकर दूसरे पिंजरे की ओर मुड़ता है। यहां एक बकरी और उसका पति बकरा, पहले से तमाशा देखने के लिए खड़े हैं। इस पिंजरे में सफेद बालों वाले दो बूढ़े कुर्सियों पर बैठे हुए शान्तिपूर्वक बातें कर रहे हैं। वे एक-दूसरे के निकट झुके हुए बड़े भेद-भरे लहजे में बातें करने लगते हैं। कभी एक-दूसरे के कान में खुसर-पुसर करने लगते हैं, कभी हंसने लगते हैं।]

पहला बूढ़ा—मैंने एक ऐसी किरण का आविष्कार किया है जिसे यदि एक बम्बार जहाज़ में फिट कर दिया जाए—अर्थात् जिस तरह हम ऐण्टी-एयरक्राफ्ट बैटरी को जमीन पर फिट करते हैं, उसी तरह से यदि वह किरण किसी बड़े बम्बार हवाई जहाज़ में फिट करके किसी नगर पर

डाली जाए, तो वह किरण केवल दो मिनट में हर प्रकार के प्राणी को मार सकती है।

दूसरा बूढ़ा—इस किरण की बैटरी बनाने में क्या खर्च आएगा ?

पहला बूढ़ा—इस प्रश्न से सम्बन्धित कागज़ तो इस समय मेरे पास नहीं हैं, परन्तु मेरा अनुमान है कि तीन सौ करोड़ रुपया तो अवश्य खर्च हो जाएगा।

दूसरा बूढ़ा—और तुम्हारी यह किरण कितने क्षेत्रफल में अपना प्रभाव फैला सकती है ?

पहला बूढ़ा—पच्चीस वर्गमील के घेरे में।

दूसरा बूढ़ा—पच्चीस वर्गमील के लिए तीन सौ करोड़ की लागत बहुत महंगी पड़ेगी। बहुत हुआ तो अधिक से अधिक तीस लाख आदमी मरेंगे—अर्थात् एक आदमी की मृत्यु का खर्च १००० रुपये ! (**सिर हिलाकर**) ऊंहूं ! यह तो बहुत महंगी मृत्यु है ! मैंने तो इससे कहीं सस्ती मृत्यु का साधन खोज निकाला है।

पहला बूढ़ा—वह क्या ? धीरे से कान में बताओ। कोई सुन न ले। यदि तुम्हारे आविष्कार में दम हुआ तो हम दोनों मिलकर इसे पेटेंट करा लेंगे।

दूसरा बूढ़ा—मैंने एक ऐसे पाउडर का आविष्कार किया है, जिसे किसी भी हवाई जहाज़ की सहायता से (इसके लिए बम्वार जहाज़ों की भी आवश्यकता नहीं रही, किसी भी साधारण से साधारण जहाज़ से काम चल सकता है) चाहे जितने बड़े प्रान्त पर छिड़क दीजिए, उस प्रान्त के रहने वाले आदमी टिड्डियों की तरह मर जाते हैं—टिड्डियों की तरह। मैंने अनुमान लगाया है कि चार सौ वर्गमील के घेरे में दस टन पाउडर काफी होगा।

पहला बूढ़ा—और इस दस टन पाउडर पर क्या लागत आएगी ?

दूसरा बूढ़ा—कुल दस करोड़। मैंने सोचा है कि मैं इस आविष्कार पर १५ प्रतिशत रॉयल्टी लूंगा—हर टन पर १५ प्रतिशत रायल्टी।

पहला बूढ़ा—एक टन से कितने आदमी मरेंगे ?

दूसरा बूढ़ा—अब यह बात तो आबादी पर निर्भर करती है। गोबी मरुस्थल या अफ्रीका के मरुस्थल में चार सौ वर्गमील में शायद चार सौ आदमी भी आबाद न होंगे। परन्तु धरती के जिन भागों पर लोग भारी संख्या में निवास करते हैं, वहां मैं समझता हूं इस पाउडर का प्रयोग बहुत लाभदायक रहेगा। यूरोप और एशिया के घनी आबादी वाले प्रदेशों में चार सौ वर्गमील में आपको एक करोड़ आदमी भी मिल सकते हैं। चार सौ वर्गमील के लिए दस टन तो चालीस वर्ग मील के लिए एक टन। यदि चार सौ वर्गमील में एक करोड़ आदमी रहते हों तो चालीस वर्गमील में दस लाख आदमी रहते होंगे जिनके लिए एक टन पाउडर काफी है। एक टन पर एक करोड़ लागत आएगी। एक करोड़ पर १५ प्रतिशत रॉयल्टी फैला लो। इससे समझ जाओ कि १० लाख मौतों पर मुझे कितनी रॉयल्टी मिलेगी, और एक करोड़ पर कितनी, और दस करोड़ पर कितनी, और···

पहला बूढ़ा—तुम्हारा तो भाग्य चमक उठेगा !

दूसरा बूढ़ा—दुर्भाग्य से शत्रु के आक्रमण में मैं अन्धा हो गया, नहीं तो मैं एक और आविष्कार करने वाला था।

पहला बूढ़ा—वह क्या ?

दूसरा बूढ़ा—वह आविष्कार इतना भयानक है कि केवल कान में बताया जा सकता है।

[दोनों वैज्ञानिक एक-दूसरे के निकट झुककर कानों में बातें करने लगते हैं।]

बकरा—इन्हीं दो बड़े वैज्ञानिकों ने बड़े हाइड्रोजन बम तैयार किए थे जिनसे सारा संसार नष्ट हो गया।

बकरी—परन्तु आश्चर्य की बात है कि ये लोग किस जोश और प्रसन्नता के साथ मौत के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं। क्या इनके यहां बच्चे नहीं थे ?

बकरा—थे तो सही, परन्तु ये लोग समझते थे कि बम सदा शत्रु के घर पर

गिरेंगे और इनके घर सदा सुरक्षित रहेंगे।

बकरी—कैसे मूर्ख लोग हैं ये ?

गधा—मूर्ख नहीं हैं, मैडम, ये लोग संसार के सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमानों में से थे और उन लोगों में से थे जिन्होंने प्रकृति पर मानव का अधिकार स्थापित कर दिया था। यदि ये लोग चाहते तो संसार को स्वर्ग-तुल्य बना सकते थे। परन्तु इन्होंने जीवन की किरण की परवाह नहीं की। ये लोग मृत्यु का पाउडर ढूंढ़ते रहे। जीवन के तत्त्वों का इन्होंने महत्त्व नहीं समझा। जब धरती पानी और बीज के लिए पुकार रही थी तो ये लोग अपनी प्रयोगशाला में घुसे हुए धरती पर सूर्य का तापमान उत्पन्न करके सारे संसार को महानाश के गर्त में ढकेलने के प्रयत्न में लगे हुए थे।

एक वैज्ञानिक—(**चिल्लाकर**) हा-हा-हा-हा-हा ! !

दूसरा वैज्ञानिक—सच कहते हो तुम ?

पहला—लाओ हाथ !

[दोनों एक-दूसरे से जोर से हाथ मिलाते हैं।]

दूसरा—कैसी शानदार तरकीब है ! वाह-वाह ! क्या सूझी है ! यह तो कवित्व है कवित्व !

पहला—हां, देखो न, कैसा अछूता आविष्कार होगा यह ! और कितना सस्ता ! बस, एक छोटा-सा प्लाण्ट काफी है।

दूसरा—एक छोटा-सा बिजली का प्लाण्ट (**खड़े होकर जोश से बोलने लगता है**) जो दस घण्टों में एक पूरे महाद्वीप की आक्सीजन को कार्बन-डाइऑक्साइड में परिवर्तित करके रख देगा और पांच दिन में सारे भूमण्डल की आक्सीजन को समाप्त करके रख देगा, और आक्सीज़न के बिना मनुष्य एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। हा-हा-हा ! क्या तरकीब है ! !

पहला—और कितनी सस्ती ! दस हज़ार में (**खड़ा होकर चिल्लाने लगता है**) ज़रा सोचो तो सही, केवल दस हज़ार में सारे संसार के प्राणी-

जगत् को समाप्त किया जा सकता है ! इससे सस्ती मौत और क्या हो सकती है ? केवल दस हज़ार रुपए ! और भई, आज-कल का समय ऐसा है कि लागत कम से कम करो और लाभ अधिक से अधिक दिखाओ। इस हिसाब से मेरा आविष्कार···

दूसरा—(**सहसा कुर्सी पर बैठ जाता है**) परन्तु दस हज़ार में हमें क्या मिलेगा ?

पहला—क्यों, वही १५ प्रतिशत।

दूसरा—दस हज़ार का १५ प्रतिशत क्या होता है, यह भी सोचा तुमने ?

पहला—(**धड़ाम से कुर्सी पर बैठ जाता है**) अरे ! यह आविष्कार तो नितान्त व्यर्थ है। इससे तो हमें कोई लाभ ही नहीं।

दूसरा—मेरी समझ में तो वही हाइड्रोजन बम ही ठीक रहेगा।

पहला—हां-हां, वही ठीक रहेगा।

[दोनों मेज़ों पर सिर टिकाकर कुछ सोचने लगते हैं। गधा, उसके बच्चे, बकरा, बकरी, मेंढा आदि आगे बढ़ जाते हैं।]

राजनीतिज्ञों की सभा

[इस पिंजरे में एक गोल मेज़ रखी हुई है जिसपर हरे रंग का कपड़ा बिछा हुआ है। इस मेज़ के चारों ओर २५-३० कुर्सियां बिछी हैं जिनपर विभिन्न देशों के प्रतिनिधि बैठे हैं। हर देश के राजनीतिज्ञ के सामने मेज़ पर एक छोटी-सी तख्ती रखी हुई है जिसपर उसके देश का नाम लिखा हुआ है।

एक मेज़ अलग भी रखी है जिसपर एक आदमी कानों पर कन-फोन (Ear-Phone) लगाए बैठा है।

जब जानवर इस पिंजरे के पास पहुचते हैं तो देखते हैं कि इन लोगों में बड़े जोर-शोर से बहस हो रही है।]

क देश का प्रतिनिधि—मेरे पास परमाणु बम है। मैं तुम्हारा भुरकस निकाल दूंगा।

ख देश का प्रतिनिधि— मेरे पास हाइड्रोजन बम है। अपनी बकवास बन्द करो।

ग देश का प्रतिनिधि—मेरे पास नाइट्रोजन बम है।

घ देश का प्रतिनिधि—मेरे पास कोबाल्ट बम है जो सब बमों का बाप है।

सभापति—ऑर्डर! ऑर्डर!! सज्जनो! मैं इस सभा के वास्तविक उद्देश्य की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं। सार्वभौम युद्ध प्रारम्भ हो चुका है, सारा संसार आग की लपटों में घिर गया है। इस भयंकर युद्ध से सारी मानव-जाति को खतरा है। यदि हम लोगों ने तुरन्त इस युद्ध को समाप्त नहीं किया, तो सारा संसार नष्ट हो जाएगा। हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम अविलम्ब संसार में शान्ति स्थापित करें। यही इस सभा का उद्देश्य है। युद्ध समाप्त कीजिए।

च देश का प्रतिनिधि—परन्तु सभापति महोदय, प्रश्न यह है कि यह युद्ध पहले किसने प्रारम्भ किया?

छ देश का प्रतिनिधि—तुमने प्रारम्भ किया।

च देश का प्रतिनिधि—तुमने। पाजी···

छ देश का प्रतिनिधि—नहीं तुमने। बदमाश···

च देश का प्रतिनिधि—(मुक्का दिखाते हुए) जनतन्त्रवाद के हत्यारे!

[दोनों प्रतिनिधि गुत्थमगुत्था हो जाते हैं। बहुत-से प्रतिनिधि उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं।]

गधा—इन लोगों को हमारे स्काउटों ने कार्डक नगर के एक तहखाने में पकड़ा था, जहां पर ये लोग अपनी सभा कर रहे थे।

गधे का बच्चा नं० १—बापू, ये लोग अब क्या रहे हैं?

गधा—बेटा, इनकी सभा की वह बैठक अभी तक चल रही है।

[इतने में कुछ राजनीतिज्ञ दोनों प्रतिनिधियों को अलग करने में सफल हो जाते हैं, और सभा की कार्रवाई फिर प्रारम्भ हो जाती है।]

ज देश का प्रतिनिधि—सज्जनो ! युद्ध समाप्त करने से पहले यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस बात का पता चलाया जाए कि युद्ध किसने प्रारम्भ किया। इसके लिए मेरा सुझाव है कि एक 'रॉयल कमीशन' तुरन्त नियुक्त किया जाए।

झ देश का प्रतिनिधि—रॉयल कमीशन ! हा-हा-हा ! यह मामले को खटाई में डालने की अच्छी तरकीब है। मैं एक 'निष्पक्ष कमीशन' के पक्ष में वोट देता हूं। ट, ठ, ड,और ढ देशों के प्रतिनिधियों का कमीशन इस कार्य के लिए नियुक्त किया जाए।

[इतने में वह व्यक्ति जो अलग एक छोटी-सी मेज़ के पास कानों में कन-फोन लगाए बैठा है, घबराकर खड़ा हो जाता है और चिल्लाकर कहता है—]

आदमी—ब्रासडक नगर समाप्त हो गया !

ज देश का प्रतिनिधि—होने दो।

आदमी—सज्जनो ! अभी-अभी समाचार आया है कि अमरीका भूखंड के पचास नगर नष्ट हो गए हैं, यूरोप भूखण्ड के दो सौ नगर समाप्त हो गए हैं। एशिया के सब देशों की राजधानियां जलकर राख का ढेर हो गई हैं। जल्दी कीजिए श्रीमान्‌जी, जल्दी युद्ध बन्द क़ीजिए। संसार के लोग तुरन्त शान्ति चाहते हैं।

ज देश का प्रतिनिधि—तुम बीच में बोलने वाले कौन हो ? बैठ जाओ !

[वह आदमी विवश होकर बैठ जाता है।]

त देश का प्रतिनिधि—सज्जनो ! मैं किसी निष्पक्ष कमीशन के पक्ष में राय नहीं दे सकता—विशेषकर ट, ठ, ड, ढ के पक्ष में—क्योंकि ये बहुत पिछड़े और गिरे हुए देश हैं, जिनकी ८० प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अनपढ़ है।

[कन-फोन वाला आदमी घबड़ाकर फिर खड़ा हो जाता है।]

कन-फोन वाला—हुज़ूर ! ८० प्रतिशत अनपढ़ और १०० प्रतिशत पढ़े-लिखे—सब मर रहे हैं। हाइड्रोजन बम शिक्षित और अशिक्षित,

सभ्य और असभ्य में कोई भेद नहीं करता। अभी-अभी समाचार आया है कि अफ्रीका के जंगलों में आग लग गई है।

त देश का प्रतिनिधि—क्यों जी थ साहब ! वह कौन व्यक्ति है ?

थ देश का प्रतिनिधि—क्यों मिस्टर ! आप किस देश के प्रतिनिधि हैं ?

आदमी—हुज़ूर ! मैं संसार का प्रतिनिधि हूं।

थ देश का प्रतिनिधि—सभापतिजी ! क्या मैं पूछ सकता हूं कि 'संसार' नाम का क्या कोई देश है ?

सभापति—नहीं। यदि होगा भी तो हमारी सभा की ओर से उसे राजनीतिक स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई है।

थ देश का प्रतिनिधि—तो बैठ जाओ, बीच में मत बोलो। इस समय जीवन और मृत्यु का प्रश्न है—युद्ध और शान्ति का प्रश्न है। हम सारी दुनिया के राजनीतिज्ञ शान्ति चाहते हैं और इसीलिए यहां इकट्ठे हुए हैं। हमें मानव-जाति के हितों का पूरा-पूरा खयाल है। हम ज़िम्मेदार लोग हैं और मानवता के प्रति हमारा जो कर्तव्य है हम उसे अधिक से अधिक मात्रा में पूरा करेंगे। उपस्थित सज्जनो ! मैं आपके सामने इस विकट अवसर पर शेक्सपियर के वे विख्यात और महान् शब्द रखता हूं—"To be or not to be."[1]

कन-फोन वाला—**(घबराहट के साथ फिर खड़ा होकर)** हुज़ूर ! आप शेक्सपियर को दोहरा रहे हैं और संसार बड़ी तेज़ी के साथ समाप्त हुआ जा रहा है। परमात्मा के लिए तुरन्त युद्ध वन्द करने की आज्ञा दीजिए, नहीं तो वहुत देर हो जाएगी। अभी-अभी समाचार आया है कि···

थ देश का प्रतिनिधि—**(जोर से चिल्लाकर)** टु बी ऑर नॉट टु बी··· चुप रहो। तुम्हारे देश को हमारी सभा की राजनीतिक स्वीकृति प्राप्त नहीं है। इसलिए हम तुम्हारी कोई बात नहीं सुन सकते।

आदमी—हुज़ूर ! उत्तरी ध्रुव देश की बरफ पिघलने लगी है !

१. जीवन और मृत्यु

थ देश का प्रतिनिधि—(अधिक जोर से चिल्लाकर) टु बी ऑर नॉट टु बी।

आदमी—आस्ट्रेलिया में तापमान दो हज़ार सेण्टीग्रेड तक पहुंच गया है।

थ देश का प्रतिनिधि—टु बी ऑर नॉट टु बी।

आदमी—सारा भारत निस्तब्ध, निश्चेष्ट हो गया है !

थ देश का प्रतिनिधि—(एकदम ज़ोर से चिल्लाकर) टु बी ऑर नॉट टु बी ! मैं हैमलेट का पूरा भाषण आपके सामने रखना चाहता हूं। यह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।

आदमी—अब सारी दुनिया चुप है ! कहीं से कोई शब्द सुनाई नहीं दे रहा है !

[कन-फोन वाला आदमी कन-फोन उतारकर मेज़ पर रख देता है और मेज़ पर सिर टिकाकर हाथों में सिर छिपाकर सिसकियां लेने लगता है।]

थ देश का प्रतिनिधि—टु बी···

[थ देश के प्रतिनिधि की आवाज़ गधे की आवाज़ में गुम हो जाती है। गधा ज़ोर-ज़ोर से हंस रहा है।]

गधे का बच्चा नं० १—बापू, तुम हंस क्यों रहे हो ?

गधा—हंसें या रोएं ? कुछ समझ में नहीं आता। इनका संसार नष्ट-भ्रष्ट होकर समाप्त हो चुका है और इनकी सभा अभी तक समाप्त नहीं हुई है।

[गधा अपने बच्चों को लेकर आगे बढ़ जाता है।]

मां और बच्चा

[इस पिंजरे में एक मां अपने सिर के बाल खोले एक पालने में अपने बच्चे को झुला रही है और लोरी गा रही है—]

मां—सो जा एटम बम के मारे
राजदुलारे
सो जा।

[बच्चा अत्यन्त भयानक, राक्षसी आकृति का है। उसकी एक आंख माथे पर है और एक आंख ठोढ़ी में। मुंह में जीभ नहीं है। जीभ दायें कान के अन्दर उगी है। इस बच्चे के तीन हाथ, एक टांग और दो सिर हैं; एक सिर के ऊपर एक सींग-सा उगा है। दूसरे सिर के अन्दर से एक छोटी-सी बांह धीरे-धीरे झूल रही है।]

गधे का बच्चा नं० १—बापू, क्या यह आदमी का बेटा है?

गधा—नहीं, यह नरक का बेटा है।

गधे का बच्चा नं० २—नरक किसे कहते हैं?

गधा—बेटा, हर प्राणी छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है, जिनका एक विशेष, नियत तापमान होता है। उस तापमान के अन्दर रहकर वह अपनी आकृति और भौतिक विशेषताओं को बनाए रखता है। परन्तु उसके तापमान को बहुत ऊंचा कर देने से उस प्राणी की आकृति और भौतिक गुण भी बदल जाते हैं। यही मानव-जाति के साथ भी हुआ। परमाणु और हाइड्रोजन बमों के युद्ध के बाद जो ये थोड़े-से मनुष्य बचे हैं, वे सब या तो अन्धे हो गए हैं, या इन्हें सन्निपात रोग हो गया है। इनमें से कोई नहीं बचेगा। धीरे-धीरे इस चिड़िया घर के सब मनुष्य समाप्त हो जाएंगे। हमारा खयाल था कि यह औरत—जिसके पेट से यह बच्चा पैदा हुआ है—शायद यह औरत मानव-जाति की पुनरुत्पत्ति में सहायक होगी। परन्तु हमारा यह अनुमान भी भ्रमपूर्ण निकला। हाइड्रोजन बम के भीषण तापमान ने

सृजन की भौतिक क्रिया को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। इस औरत की कोख अन्धी हो चुकी है। अब यह मां अपनी कोख से कालिदास, शेक्सपियर, टैगोर, गोर्की, रोमां रोलां, तुलसी, गालिब, बू अली सेना, ल्योनार्दो-दा-विंची, अशोक, अकबर, कन्फ्यूशिअस, बुद्ध और मसीह पैदा नहीं कर सकती। मानव-जाति की ट्रेजडी यही है कि जब उसके सामने जीवन और मृत्यु का प्रश्न आया, तो उसने मृत्यु को चुन लिया। इसलिए अब मानव-जाति का कोई भविष्य नहीं है।

[पर्दा]

अन्त

[जब पर्दा उठता है तो वही धरती है—अपनी धुरी पर घूमती हुई। आकाश है—दूधिया आकाश-गंगा वाला। तारों का जुलूस एक क्षितिज से दूसरे क्षितिज तक सजा हुआ है। वही आदमी अपने दोनों हाथ फैलाए, धरती की ओर मुंह किए और दर्शकों की ओर पीठ किए खड़ा है। कुछेक क्षणों की चुप्पी के पश्चात् उसी कोरस की आवाज़ विशाल वातावरण में गूंज उठती है—]

कोरस—परन्तु अभी मानव-जाति का अन्त नहीं हुआ
वह अभी जीवित है
और इसी धरती पर रहती है
अभी तक वही पृथ्वी है
वही आकाश है
वही सुगन्ध है।
वही शहद की मक्खी है
वही फूल हैं
वही शहतूत के पत्ते हैं

और वही रेशम है
बुलबुल अभी तक गीत गाती है
और कली अपने भविष्य के लिए मुस्कराती है
और मां अपने सोए हुए बच्चे के चेहरे में
आने वाले स्वर्ग का रूप देखती है
....

समय एक मां है
इतिहास एक पांसा है
बच्चा एक स्वप्न है—
स्वर्ग का, नरक का
कौन-सा स्वप्न तुम्हारा है ?—
स्वर्ग का ? नरक का ?
अरे मानव ! मेरे भाई ! मेरे साथी !
मेरे मित्र, मेरे प्यारे !
कौन-सा स्वप्न तुम्हारा है ?
यह निर्णय आज करना होगा।

[कोरस की अन्तिम आवाज़ पर दर्शकों की ओर पीठ किए हुए जो आदमी खड़ा है, वह दर्शकों की ओर घूमता है और धीरे-धीरे रंगभूमि के मध्य की ओर बढ़ता है। यह आदमी सिर से पांव तक नीले कपड़े में लिपटा हुआ है। उसके मुख पर भी नीले रंग की एक नकाब है जिसके ऊपर एक प्रश्नवाचक चिह्न (?) बना हुआ है। जब यह व्यक्ति रंग-भूमि के ठीक मध्य में आ जाता है तो अपने दोनों हाथ दर्शकों की ओर बढ़ा देता है, और दर्शक देखते हैं कि इस आदमी के हाथ में 'हाइड्रोजन बम' है दूसरे हाथ में 'शान्ति की फाख्ता'।]

(पर्दा)

1420

●●●